श्रीवेंकटनगाधिपति शतक

‘पाठक मित्र’ व्याख्या

हिन्दी अनुवाद

प्रो. वै. वेंकटरमण राव

तेलुगु मूल

मंचेल्ल कृष्णकवि

तिरुमल तिरुपति देवस्थानम्

तिरुपति

2023

SRI VENKATA NAGADHIPATHI SHATAK

Hindi Translation
Prof. Y. Venkata Ramana Rao

Telugu Original
Manchella Krishna Kavi

T.T.D. Religious Publications Series No. 1453

©All Rights Reserved

First Edition - 2023

Copies : 250

Published by :
Sri A.V. Dharma Reddy, IDES
Executive Officer,
Tirumala Tirupati Devasthanams,
Tirupati.

D.T.P:
Publications Division,
T.T.D, Tirupati.

Printed at :
Tirumala Tirupati Devasthanams Press,
Tirupati.

प्राक्कथन

मनुष्य के जीवन में जब-जब कठिन समय आता है और उसे जीवन में अपनी समस्याओं को दूर करने का कोई रास्ता नहीं दिखाई देता है, तब वह परम पिता परमेश्वर की शरण में जाता है। वह उन्हीं के चरणों में अपने मन का कष्ट अर्पित करता है और वह उनसे अपने कष्टों से मुक्ति पाने एवं मोक्ष प्राप्ति की प्रार्थना करता है।

श्री मंचेल्ल कृष्ण कवि भी ऐसे ही भक्त हैं जिन्होंने श्री बालाजी भगवान अर्थात् वेंकटेश्वर भगवान को अपना सर्वस्व माना एवं उनकी स्तुति में 'श्रीवेंकटनगाधिपति शतक' की रचना की।

इस शतक में कुल 112 पद्य हैं। उत्पल माला एवं चंपक छंदों में प्रस्तुत हैं। इस शतक के प्रथम 15 पद्यों में भगवान के 108 नामों का उल्लेख है। इसके बाद के पद्यों में कवि 'वेंकटनगाधिपति' से भक्त को अपने सेवक के रूप में स्वीकारने, दया रस प्लावित दृष्टि उन पर बरसाने की प्रार्थना करते हैं। कवि कहते हैं कि ''मैंने जो भी अपराध किए हैं, मुझमें जो भी कमियाँ हैं, उनकी ओर मत देखिए। मेरी प्रार्थना पर ध्यान देकर मुझे तारिएगा।'' मैं आपका शरणार्थी हूँ। कृपा करके मेरे अंतर शत्रुओं का नाश कर मेरी रक्षा कीजिए।

भक्ति की अतिशयता में कवि ने भगवान का 'अरे' कहकर भी संबोधन किया है। यह सहज स्वाभाविक है। इससे कवि का निर्मल हृदय झलकता है।

कवि के अनुसार भक्ति के बिना और किसी संपदा और ज्ञान का होना या न होना व्यर्थ है। कवि ने अपने पदों के माध्यम से यह बताया है कि अनन्य भक्ति उत्तमोत्तम है। 'अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं

मम' कहने पर तिरुमलेश, वेंकटनगाधिपति करुणा दृष्टि बरसाएंगे। तब तक वे हमारी परीक्षा लेते रहेंगे। इसलिए हमें श्रीवेंकटेश पर कर्तव्य भार छोड़ उनकी सेवा में रत रहना चाहिए तभी हम पुनर्जन्म रहित मुक्ति पा सकते हैं। कवि ने अपने कई पदों में स्वामी को असमंजस की स्थिति में डालकर दास की रक्षा करने के लिए बाध्य किया है। यह भक्त का एक विशेष भक्ति रूप है। कवि ने लौकिक विषयों के आधार पर ध्यान की उपयुक्तता पर प्रकाश डाला है। कई छंदों में भक्त (कवि) भगवान से तीखे वचन की सहज प्रवृत्ति को भी अपनाया है। यह भगवान के प्रति निश्चियात्मिकता भक्ति का रूप माना जाता है जो भक्तों की अपनी सहज प्रवृत्ति होती है। भगवान पर दोष लगाने के साथ-साथ प्रार्थना करना, भक्त का सहज स्वभाव होता है। इस विध् अधिक भक्ति झलकती है।

इस पुस्तक का हिंदी अनुवाद प्रो.वाई. वेंकटरमण राव जी ने 'श्रीवेंकटनगाधिपति शतक' नाम से किया है। इस कृति में कवि ने 112 छंदों के माध्यम से वेंकटनगाधिपति की स्तुति की है।

हमें पूर्ण विश्वास है कि इस पुस्तक को पढ़कर आपको श्री विष्णु के अवतार बालाजी भगवान की लीलाओं का एवं भक्त वत्सल भगवान की भक्त के प्रति वात्सल्य भाव का पता चल जाएगा। हम सब इस पुस्तक को पढ़कर भगवान बालाजी की कृपा के पात्र बनेंगे।

सदा श्रीहरि की सेवा में,

कार्यनिर्वहणाधिकारी,
तिरुमल तिरुपति देवस्थानम्,
तिरुपति

अनुवादक का नमन

'श्रीवेंकटनगाधिपति शतक' का अनुवाद-कार्य संभालने का महत्वपूर्ण भार मुझे प्रथमतः भगवान बालाजी की कृपा से, उसके बाद अपने सौभाग्य से मिला हुआ मानता हूँ। इस संदर्भ में मेरी अपनी एक अभिव्यक्ति है। अभी हाल ही में मुझे 'श्रीवेंकटाचल माहात्म्यम्' गद्य कृति के अनुवाद का भाग्य मिला। यह भी भगवान की कृपा से ही हुआ। यह पुस्तक तिरुमल-तिरुपति देवस्थानम् की ओर प्रकाशित हुई। इसके तुरंत बाद ही, श्री मंचेल्ल कृष्ण कवि कृत 'श्रीवेंकटनगाधिपति शतक' के भाषांतरीकरण का भाग्य मुझे प्राप्त हुआ। इस कार्य को मुझे सौंपने का श्रेय आचार्य बेतवोलु रामब्रह्मम् जी को जाता है। संधानकर्ता अद्दंकि श्रीनिवास को भी श्रेय का कुछ अंश जाता है। सबको मेरी शुभकामनाएँ। इस अनुवाद को मैं भगवान श्रीवेंकटेश्वर के चरणारविंदों में अर्पित कर रहा हूँ।

02/10/2013 **यद्दनपूड़ि वेंकटरमण राव**

अनुवादक के मन की बात

मानव का जीवन कालचक्र की तीन बिंदुओं से बन्धा है - जन्म, जीवन और मृत्यु। इनमें प्रथम और तृतीय तथ्य मानव के वश में नहीं होते। अपने जीवन को बनाना (भगवान की कृपा प्राप्ति से) या बिगाड़ना (स्वयं कृतापराध के भाव से) मानव अपने कर्मों के वश रहकर, अपने-आप कर लेता है। ऐसी स्थिति में मानवीय दृष्टि को जीवन के तीन संचालक तत्त्व - श्रृंगार, नीति और भक्ति (वैराग्य) अपनी ओर आकृष्ट करते हैं। 'श्रृंगार', मानव के मानसिक और शारीरिक आवश्यकता से संबद्ध है, तो 'नीति' वैचारिक और लौकिक जीवन को परिपुष्ट करनेवाली होती है। मानव के लिए 'भक्ति' (वैराग्य सहित) आध्यात्मिक और पारलौकिक जीवन की पथप्रदर्शिका है। मानव को सुनिश्चित, सुचारु और समग्र रूप से अपने जीवन पथ पर चलना होता है। प्रधानतः इसके सूत्र नीति और भक्ति में मिलते हैं। इन्हीं से जीवन मार्ग और जीवन सूत्र मिलते हैं। इन पर महर्षि और ज्ञानी कवि समय-समय पर प्रकाश डालने का प्रयत्न करते आये हैं। इन प्रयत्नों के फलस्वरूप भारतीय समाज को वेद, उपनिषद, पुराण और इतिहास ग्रंथ मिले हैं। कवियों और साहित्यकारों के अनवरत प्रयत्न के द्वारा इनके अध्ययन होते आ रहे हैं। इन जीवन सूत्रों को सामान्य व्यक्ति तक पहुँचाने के प्रयत्न भी काल निरपेक्ष और सापेक्ष रूप से संप्रेषित होते आ रहे हैं। इस दिशा में भक्ति और नीति संबंधी शतक सबसे आगे हैं। इनका विविध भाषाओं में अनुवाद की प्रचुरता और उसकी अविच्छिन्न परंपरा तेलुगु भाषा की अपनी संपत्ति है।

संस्कृत शतक रचनाओं के संदर्भ में 'भर्तृहरि' प्रायः स्मरणीय राजा हैं। उन्होंने अपने ही जीवन के अनुभवों के आधार पर वैराग्य, भक्ति और श्रृंगार के संदर्भों को सबसे पहले पहचाना था। महाविलासी राजा से प्रारंभ होकर महाविरागी ऋषि के स्तर तक उनका जीवन उभरा है। आपने उक्त तीनों तत्त्वों पर 'त्रिशतक' प्रस्तुत किया। उन्होंने ही संस्कृत और प्राकृत साहित्य में शतकों की परंपरा की नींव डाली थी। भर्तृहरि का समय सन् 650 माना जाता है। सन् 650 से लेकर शतक रचना की परंपरा अक्षुण्ण चल रही है। इस परंपरा को तेलुगु के कवि आज भी सुदृढ़ रूप से चालू रख रहे हैं। तेलुगु में भक्ति और नीति शतक अनेक हैं। कहना चाहिए सैकडों की संख्या में हैं। भक्ति के क्षेत्र को अनुप्लावित करनेवाली इस स्रोतस्विनी ने तेलुगु को अक्षय निधि दी है।

तेलुगु भाषा में लगभग समस्त देवी-देवताओं पर भक्ति शतक मिलते हैं। नृसिंह, राम, कृष्ण, शिव और भगवान वेंकटेश्वर पर भक्ति शतक इस परंपरा में प्रथम स्थान ग्रहण करते हैं। कलियुग नाथ श्रीवेंकटेश्वर पर तेलुगु के भक्त कवियों ने अनेक शतक पद्य सुमनों को रचकर उनके श्रीचरणों में समर्पित किया है। इस परंपरा के प्रथम भक्त शिरोमणि ताल्लपाक अन्नमाचार्य हैं। उन्होंने अपने संकीर्तनों के साथ-साथ उत्पलमाला और चंपकमाला पद्य छंदों में श्रीवेंकटेश्वर शतक की रचना की है। उनका समय सन् 1408-1503 रहा है। अन्नमाचार्य के पुत्र पेद्द तिरुमलाचार्य ने भी एक 'श्रीवेंकटेश्वर शतक' की रचना की है (सन् 1493-1553)। आगे श्री ऊडुमूड्डु सूरपराजु ने एक और 'श्रीवेंकटेश्वर शतक' (ई. सोलहवीं सदी) रचा था। इसी शताब्दी के नामयोगी ने एक शतक भगवान के नाम पर प्रस्तुत किया। 'श्रीवेङ्कटाचल यात्रा शतक' श्रीमुतुकपल्लि नरसिंह कवि का है। 'श्रीवेंकटाचल रमण शतक' (रचनाकार

अज्ञात हैं) की सूचना भी मिलती है। इसी क्रम में जुड़नेवाली भक्ति भाव युक्त रचना है - ''श्रीवेंकटनगाधिपति शतक'' (सन् 1750)। तेलुगु साहित्य के मध्य युग तक के भक्तों में भक्तिन मातृश्री तरिगोंड वेंगमांबा उल्लेखनीय हैं - आपके नाम पर ही तिरुमल में नित्यान्नदान वितरण भवन का निर्माण हुआ है। कहा जाता है कि वेंगमांबा अपने समय में तिरुमल पर आनेवाले भक्तों को अन्न प्रसाद दिया करती थीं। आपने भगवान को ही अपना सर्वस्व माना था। उनका समय 19 वीं शती का पूर्वार्द्ध था। उन्होंने भगवान पर एक शतक लिखा था - 'श्रीवेंकटेश्वर शतक।'

पूर्व उल्लिखित सारी रचनाएँ तेलुगु के प्राचीन और मध्य युगीन परंपरा से संबद्ध हैं। आधुनिक युग में भी यह परंपरा अबाध चल रही है। भगवान वेंकटेश्वर स्वामी पर भी अनेक शतक लिखे गये हैं। आधुनिक शतकों की विस्तृत संख्या के कारण यहाँ उन पर प्रकाश डालने का प्रयत्न नहीं किया गया।

अब प्रस्तुत शतक ''श्रीवेंकटनगाधिपति शतक'' की ओर दृष्टि डालेंगे। इस शतक के लेखक का पूरा नाम मंचेल्ल कृष्ण कवि है। ये वेंकटगिरि रियासत के दरबारी कवि थे। वेंकटगिरि रियासत आन्ध्र प्रदेश के चित्तूर जिले में है। तिरुपति से लगभग 60 कि. मी. की दूरी पर वेंकटगिरि नामक शहर भी बसा है। रियासतों की विलीनता के बाद यह रियासत चित्तूर जिले के अंतर्गत आ गयी। मंचेल्ल कृष्ण कवि के पिता का नाम 'पापय मंत्री' था। कवि का समय सन् 1750 ई. माना जाता है। इस कवि ने पाँच शतकों की रचना की है, यथा-पुरुष मुख्य शतक, रंग शतक, रघुपुंगव शतक, कृष्ण शतक और श्रीवेंकटनगाधिपति शतक। अब केवल दो शतक मिलते हैं - पुरुष मुख्य शतक और श्रीवेंकटनगाधिपति

शतक। श्रीवेंकटनगाधिपति और कोई नहीं बल्कि स्वयं श्रीवेंकटेश्वर भगवान ही हैं।

सामान्यतः शतक 101 से लेकर 108 पद्यों का होता है। 116 पद्यों के शतक भी मिलते हैं। प्रस्तुत शतक में कुल 112 पद्य हैं। ये उत्पल माला और चंपक माला छंदों में प्रस्तुत हैं। ''मकुट'' से युक्त होना तेलुगु शतकों की विशेषता है। छन्द में यह मुकुट, एक शब्द, वह भी अंतिम चरण का अंतिम शब्द होता है। प्रस्तुत शतक का मकुट तो दो सामासिक शब्दों का है - ''वेंकटनगाधिपती! विलस्त्कृपामती।'' शतक में भगवान के गुणों का, मुख्यतः उनकी भक्तवत्सलता की प्रशंसा और विवरण एवं गुण कीर्तन होते हैं। लेकिन प्रस्तुत शतक की विशेषता एक और है जो अन्य शतकों में दिखाई नहीं देती है। इस शतक के प्रथम 15 पद्यों में भगवान के 108 नामों (जप वत) का उल्लेख है। एक प्रकार से लगता है कि यह अष्टोत्तर शत नाम जप ही है 16 वाँ पद्य भी इसी क्रम से कुछ जुड़ता है। प्रायः सब नाम संस्कृत समास रचना से युक्त हैं। लिप्यंतरण मात्र से कोई भी भक्त अपनी भाषा लिपि द्वारा इनको समझ सकता है। 17 वें पद्य से आगे के पद्य तेलुगु रचना परंपरा के अनुरूप हैं। इनमें भगवान वेंकटेश्वर के गुण और रूप सौंदर्य झलकते हैं। ये भक्त कवि की आत्मानुभूति से सिंचित हैं।

''श्रीवेंकटनगाधिपति शतक'' नाम से यह पुस्तक रूप में एमेस्को पब्लिषर्स द्वारा सन् 2002 में प्रकाशित हुआ। आचार्य रामब्रह्मम् जी इसके परिष्कर्ता और व्याख्याता हैं। आचार्य की कामना थी कि यह शतक अन्य भाषाओं के पाठकों को भी प्राप्त हो। हिन्दी में इसे प्रस्तुत करने का सौभाग्य उन्होंने मुझे दिया है। इसके प्रकाशन की बात थी। मेरी इच्छा थी

कि तिरुमल तिरुपति देवस्थानम् के द्वारा ही यह कार्य संपन्न हो। यह अब ति.ति.दे. द्वारा प्रकाशन विभाग के मुख्य अधिकारी डॉ. टी. आंजनेयुलु की मनोकामना से प्ररित होकर हिन्दी पाठकों के सामने आ रहा है। तदर्थ, आचार्य रामब्रह्मम् का तथा मुख्य कार्य निर्वहण अधिकारी तथा उन सभी का, जिनका सहयोग इस प्रक्रिया में जुड़ा है, मैं उन सभी का आभारी हूँ।

भगवान की प्रशस्ति भगवान के
चरणों में समर्पित

दि.21-12-2017 यद्दनपूडि वेंकट रमण राव

श्रीवेंकटनगाधिपति शतक

श्रीमहिलाभिरामा! मुनिशेखर संस्तवसीम! तोयद
श्याम! मरुल्ललाम! समरांगणभीम! नितांत वैभवो
द्दाम! समस्त भव्यगुणधाम! महीजन दोषहृत्प्रश
स्तामितनाम! वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ॥ 1 ॥

व्याख्या

लक्ष्मी देवी नामक महिला के लिए अभिराम! मुनीश्वरों की संस्तुतियों के लिए आगार! मेघ वर्णा! देवताओं में अग्रगण्य! समरांगण में भीकराकार! नित्य मंगल वैभवों से विराजित! सभी भव्य गुणों के निलय! भूलोक वासियों के पापों और दोषों को हरने में प्रशस्त! अतुलित महिमाओं से युक्त नामों को धारण करनेवाले प्रभु। नित्य नूतनता से प्रकाशित दया गुणों से भरे अंतरंगवाले! हे संस्कृपामति से विराजमान!

विशेष

दयामय होकर वेंकटाचल पर विलसित प्रत्यक्ष कलियुग भगवान श्रीवेंकटेश्वर की स्तुति में यह शतक रचित है। 'वेंकटनगाधिपती! विलस्त्कृपामती! शतक का 'मकुट' है। शतक का मकुट अंतिम शब्द, शब्द समूह (समास रूप) अथवा अंतिम चरण होता है। इस शतक का 'मकुट' 'चंपकमाला' तथा 'उत्पलमाल' छन्दों के लिए उपयुक्त है। 'यति' स्थान से पहले ही 'मकुट' को आरंभ करनेवाले कवियों की संख्या बहुत कम है। हर चरण में यति (विश्रांति) होती है। चंपकमाला छंन्द में 11 वाँ अक्षर, उत्पलमाला में 10 वाँ अक्षर 'यति' होता है। 'यति' स्थान से 'मकुट' का आरंभ होता है तो चौथे-चरण के प्रथम अक्षर के लिए कुछ

कठिनाई उपस्थित हो जाती है तथा इसके कारण कवि के पांडित्य की परीक्षा हो जाती है। इस प्रकार का छंन्द-निर्वाह बहुत ही कठिन होता है। कंचेर्ल गोपन्न (भद्राचल रामदास) का 'दाशरथी शतक' इसी मार्ग पर चला है। इसके कारण उन्हें यश प्राप्त हुआ है।

''श्री'' से आरंभ करना तेलुगु भाषा का काव्य-संप्रदाय है। वह भी यहाँ ''लक्ष्मीदेवी'' के अर्थ में ही प्रयुक्त है। यह अत्यंत शुभकर है।

प्रस्तुत शतक में प्रथम सोलह छन्द संबोधनों से ही चलते हैं। शायद कृष्ण कवि षोडशोपचारों का स्फुरण भक्तों के मानस में भरना चाहते हों। उसके बाद ही विनतियाँ और प्रार्थनाएँ चलती हैं। नाम संबोधनों को बांधने से गुण प्रशस्ति के साथ अलंकार योजना कानों को आनंद देती है। इसमें विशेष सौंदर्य झलकता है। सर्वत्र अंत्यानुप्रास (तुक) का निर्वाह हुआ है। मकुट के दो सामासिक पदबंधों में 'ती' इसे चार चाँद लगाती है।

भूजनसंचय त्रिदश भूज! समर्चित देवता परि
व्राज! महाहिताहि खगराज! दरस्मित सुंदराननां
भोज! वचोविलास रसमोदित लोचन कर्णराज हा
राज बिडौज! वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ॥ 2 ॥

व्याख्या

दयामयी! हे वेंकटेश्वर! भूलोक जन समूह के कल्पतरु! देवर्षि भृगु की अर्चना करनेवाले प्रभु! आदिशेष और गरुड दोनों के हितैषी! मंदस्मिति से विलसित मुख पद्म से विराजित! आपके वचन कौशल से आकर्षित होनेवाले सर्पराजभूषण शिव, ब्रह्म और इंद्र को आनंद प्रदान

करनेवाले स्वामी! इन तीनों में से हर एक को वचनों से सांत्वना देकर करनी से कष्टों को दूर करनेवाले श्रीमहाविष्णु आप ही हो भगवान!

विशेष

'परिव्राज' शब्द का अर्थ सन्यासी है। पर इसके पर्यायवाची शब्द ऋषि-मुनि भी हैं। श्रीहरि का, श्रीनिवास के रूप में, श्रीवेंकटेश्वर के रूप में, अवतरित होने का मूल कारक भृगु महर्षि विष्णु पर कुपित होकर उनके वक्ष पर पदाघात करना ही प्रमुख कारण है। श्रीमहाविष्णु से रूठ कर श्री लक्ष्मी देवी वैकुंठ छोड़कर भूलोक पहुँच गईं। उनको ढूँढते-ढूँढते श्रीहरि पृथ्वी पर 'वेंकटेश' के नाम से तिरुमल में विराजमान हैं। यह पौराणिक गाथा है। जब भृगु ने पदाघात किया था, तब श्रीहरि ने ऋषि के पैर को हाथों में लेकर दबाया था, इस संदेह से कि कहीं भृगु को पदाघात के कारण पैर में चोट तो नहीं लगी है ना!। दबाते-दबाते उन्होंने भृगु महर्षि के पद तल में स्थित एक महत्वपूर्ण आँख (अहंकार से पूरित) को भी फ़ोड दिया, इस प्रकार अपनी लीला दिखाई। यह मूल कथा है। इस प्रकार एक देवर्षि की सेवा-अर्चना करनेवाले श्रीहरि, अर्चना पानेवाले तथा स्वयं अर्चक होना एक विशेष बात है।

इसमें 'अहि' और 'खग' शब्दों में समास है तो उसके ऊपर 'राज' शब्द से तत्पुरुष समास बना है। 'लोचनकर्ण' का अर्थ है आँखों को ही कान के रूप में पानेवाले - साँप सर्पचक्षुश्रव हैं। सर्पराज को ही हार के रूप में पहननेवाले - लोचन कर्णराज शिव हैं। इस प्रकार के पदबंधों के निर्माण को 'शब्द प्रौढि' कहते हैं। समस्त छन्द में अंत्यानुप्रास (तुक) है।

संतत मि त्र हृद्वन वसंत! सुरारिकृतांत! मंजुल
स्वांत! नितांतकांत! गुणवंत! निरंतर भाग्यवंत! य

त्यंत यशः प्रपूरित समस्त दिशांत! सुशांत! सर्व वे
दांत निशांत! वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ॥ 3 ॥

व्याख्या

अर्जुन आदि मित्रों के हृदय उद्यान वनों के लिए हमेशा वसंतऋतु सम! (आनंद प्रदान करनेवाले!) राक्षसों के लिए यम (कृतांत)! अत्यंत सरल और सुंदर मंजुल मनवाले! कांतियुत शरीरवाले! गुणवान! निरंतर भाग्यशाली! यश से प्रपूरित समस्त दिशाओं वाले! सत्व-शांत गुण संपन्न! सर्व वेदांत ज्ञान-सार निलय! वेद-तत्वस्वरूप! वेंकटेशा! दयामया!

विशेष

यहाँ मित्रों के हृदयों की तुलना उद्यान वनों से की गयी है। परिणामतः उन्हें विकसित और पुष्पित करनेवाले बने हैं श्रीवेंकटेश्वर भगवान। हृदय वन है तो श्रीनिवास वसंत ऋतु हैं। एक रूप दूसरे रूप की हेतु है। हर अवतार में श्रीहरि श्रीलक्ष्मी के साथ ही रहते हैं इसीलिए श्रीवेंकटेश्वर नित्य भाग्यवान हैं, धनवान हैं। आज भी दिन-ब-दिन उनकी आय भक्तों द्वारा प्राप्त मनौतियों से बढ़ ही रही है।

सुंदरतुंद! तापस विशुद्ध मनोऽब्जमिलिंद! संतता
नंद! वशिष्ठ नारद सनंदन वंद्य पदारविंद! गो
विंद! समस्तलोक परिविश्रुत कीर्ति जितांबुजासन
स्यंदनबृंद! वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ॥ 4 ॥

व्याख्या

सुंदर छोटी तोंदवाले (तुंद)! तपस्वी जनों के निष्कलुश मन-कमल के भौरे! उन्हीं के मानस में विहरण करते हुए सुख प्राप्त करनेवाले आनंदनिलय। वशिष्ठ, नारद, सनकसनंद आदि महामुनि समूह से निरंतर

वंदित पादपद्म युक्त! (यहाँ भाव है कि समस्त ऋषि, मुनि और भक्त समूह हमेशा उनके पाद पद्मों में अनुरक्त हैं)

हे गोविंद! आपकी कीर्ति समस्त लोकों में व्याप्त है। उस कीर्ति से ही आप अंबुजानन स्यंदनवृन्द (ब्रह्म के रथ को खींचनेवाले हंसों का समूह दुग्ध धवल हुआ है - यह कवि समय है) बने। हंस सफेद वर्ण के होते हैं और यश का रंग भी धवल ही है। उज्जवल धवल भगवान की कीर्ति ने ब्रह्म के वाहन (हंस) पर विजय पायी है। उस विजयी धवलता रूपी कीर्ति युक्त कांति पुंज हैं आप हे भगवान वेंकटेश्वर।

विशेष

भौरें पद्म की ओर दौडते हैं। उसी प्रकार भगवान श्रीवेंकटेश्वर विशुद्ध मन को ढूँढ़ते रहते हैं। ‘गो’ शब्द के अनेक अर्थ हैं - भूमि, गाय, बैल, आदि। समस्त भूलोकवासियों को आनंद प्रदान करनेवाले भगवान श्रीवेंकटेश्वर (गोविंद) ही हैं।

‘स्यंदन’ का अर्थ वास्तव में रथ है। इस शब्द को वाहन के पर्याय के रूप में कवि परंपरा में ग्रहण किया गया है - स्यंदनवृंद। ‘अर्थ व्याप्ति’ ही समझना है।

तोयदनीलकाय! गतदोषनिकाय! निकृत्तमत्तदै
तेय! नतांजनेय! शतधृत्यमराधिप मानसांबुज
ध्येय! रमासहाय! तरुणेंदुकलाधरगेय! संतत
न्याय विधेय! वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ॥ 5 ॥

व्याख्या

वर्षा के समय के बादल के समान काले रंग के शरीरवाले! दोषों के समूहों से भुक्त काया! हे निर्दुष्ट मूर्ति! अदिति पुत्र राक्षसों के संहार

का अदिति की संतान राक्षस वरदानों की शक्ति से मदमस्त होकर श्रीहरि से शत्रुता मोलकर भिडी तो उन्होंने सबका संहार किया। हे नत आंजनेय! (आंजनेय श्रीराम के सामने ही झुकते हैं। ऐसे हनुमान श्रीनिवास के सामने भी झुककर वंदना करते हैं क्योंकि श्रीनिवास ही श्रीराम हैं। भगवान के ब्रह्मोत्सव के समय हनुमद्वाहन पर श्रीराम की मूर्ति के रूप में ही दर्शन देते हैं श्रीवेंकटेश्वर। इस प्रकार हनुमान श्रीनिवास के सामने नतमस्तक होते हैं। इसीलिए श्रीवेंकटेश्वर नतांजनेय हैं।)

''शर धृति'' सृष्टिकर्ता 'ब्रह्म' का एक नाम है। अमरलोक के अधिपति इंद्र हैं। इन दोनों के हृदयों में श्रीनिवास हमेशा रहते हैं। इन दोनों के मनकमल हमेशा आप के ध्यान में रत रहते हैं। ये रमा सहाय भी हैं। 'रमा' श्रीलक्ष्मीदेवी का एक और नाम है। दुष्टों को दंडित करने और शिष्टों की रक्षा में रमा श्रीहरि की सहायता करती रहती हैं। (नरकासुर का वध करने में आपकी सहायता श्रीकृष्ण को मिली थी और सुदामा की सहायता के लिए भी लक्ष्मी आगे रही हैं। रावण वध में भी सीता की सहायता रही है।)

तरुण (नव) चंद्ररेखा से विभूषित शिव जी से श्रीनिवास अनवरत कीर्तित हैं। हमेशा सर्व कामों में न्याय (और धर्म) के प्रति विधेय हैं वेंकटेश्वरनगाधिपति! आपको शत शत प्रणाम।

विशेष

वास्तव में धर्म और न्याय अलग-अलग नहीं हैं। जन व्यवहार में धर्म और न्याय अलग-अलग माने जाते हैं। इस प्रकार का व्यवहार प्रसिद्ध है। इसीलिए कवि ने वेंकटनगाधिपति को 'संतत न्याय विधेय!' कहकर संबोधित किया है।

श्रीश! जगन्निवेश! मुनिबृंद मनोऽब्ज दिनेश! तारका
काशनदी द्युकेश शशि काश बलश्वसनाशनेशनी
काशयशःप्रकाश! परिखंडित दुर्भवपाश! केशिमां
साशि विनाश! वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ॥ 6 ॥

व्याख्या

'श्रीश' (आप लक्ष्मी के पति हैं)! समस्त जगत के निवासी! (आपका निवास समस्त जगत है) मुनियों के समूहों के मन रूपी पद्मों के लिए आप सूर्य हैं। नक्षत्र (तारे), आकाश गंगा (आकाश नदी), शिव (द्युकेशी), चंद्र(शशि) काश, बलराम, सर्पों के अधिनायक आदिशेष आदि सबकी सम कीर्ति-चंद्रिकाओं के प्रभु! संसार(भव) बंधनों के दुष्प्रभावों को काटनेवाले परदैव! हे केशि नामक राक्षस के संहारका हे वेंकटनगाधिपती! (आपको नमन!)

विशेष

यश (कीर्ति) के वर्णन में धवल वस्तुओं, व्यक्तियों आदि से रुढ़ार्थों से माला गूँथना, संस्कृत और आंध्र साहित्य में विशेष रूप से मिलता है।

बलराम श्याम वर्ण के हैं, परंतु धवल वस्त्र ही धारण करते हैं (यह भक्तकवि पोतना की परिकल्पना है)। श्रीमन्नारायण का सफेद केश रोहिणी के गर्भ में और काला केश देवकी के गर्भ में प्रवेश करने के कारण बलराम और कृष्ण अवतरित हुए - यह महाभारत की गाथा है (तेलुगु महाभारत, आदि पर्व, 199)। इतना ही नहीं, बलराम तो आदिशेष के अवतार ही हैं न! बाकी सब वस्तु अपनी धवलता (सफेद रंग) के लिए प्रसिद्ध हैं ही।

मांसाशि, मांसाष्टान, पललाशि शब्द राक्षस शब्द के पर्यायवाची ही हैं।

पंकजगर्भ मुख्यसुरवार्धि शशांक! विनिर्गताश्रिता
तंक! सुरूपभाव विजित प्रथिताभि नवीन कोटि मी
नांक! सुधांबुराशि तनया समलंकृत पावनैक वा
मांक! शुभांक! वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ।। 7 ।।

व्याख्या

ब्रह्म को अगुवा के रूप में मानकर चलनेवाले देवताओं के समुद्र के लिए चंद्रमा सम श्रीवेंकटेश्वर (पंकजगर्भ = ब्रह्म) अपने भक्तों के सामने उभरनेवाले समस्त आतंको को (कष्टों और रुकावटों को) दूर करने वाले (श्रीनिवास)!

मछली (मीन) को अपने केतन (झंडा) पर निशान के रूप में रखनेवाले हैं कामदेव। वे अत्यंत सुंदर हैं। सौंदर्य में पुरुष जाति में अद्वितीय हैं। ऐसे कोटि कामदेवों को सुंदरता में पराजित करनेवाले दिव्य सौंदर्य से युक्त वेंकटेश! (अभि, नवीन = अति सुंदर कहकर कवि संबोधित करते हैं)

सुधा (क्षीर) समुद्र की तनया श्रीलक्ष्मी देवी हैं। वे हरि के वामांक (बाईं जांघ) पर आसीन हो विभासित होती हैं। वे बहुत आकर्षक आभूषणादि से अलंकृता होकर विराजमान रहती हैं। लक्ष्मी देवी स्वयं पवित्र हैं। उनके बैठने से हरि का वामांक भी परम पवित्र हो गया है। इसीलिए हरि को पवित्र बाईं जंघा से युक्त संबोधित किया गया है। भगवान श्रीनिवास के समस्त सामुद्रिक चिह्न, नाम, आयुध सब शुभप्रद

ही हैं। इसलिए भी वे शुभांक हैं। ऐसे वेंकटनगाधिपति की वंदना यहाँ कवि कर रहे हैं।

विशेष

'अम्बु' शब्द का अर्थ जल है। अंबुराशि का अर्थ अपार जल समूह है। सुधांबुराशि मानी क्षीर-जल-राशि यानी क्षीर समुद्र है। भगवान श्रीहरि का वास स्थान क्षीर समुद्र ही है।

'नव' का अर्थ नवीन है। अभिनव भी प्रचलित अर्थ है। उसी प्रकार अभिनवीन शब्द का प्रयोग इस छंद में प्रयुक्त है। इस विशेषण से युक्त कर भगवान बालाजी के सौंदर्य को अभिनंदनीय कहा गया है। वे ''प्रथिताभिनवीन कोटि मीनांक'' हैं।

हाटक सत्किरीट! चरणाब्ज निवेशित सर्वदेवता
कोटि किरीट! कूट रुचिगुंभित भास्वदुरः कवाट! लो
काट! खरेशु खंडित निशाट! मनोज्ञ ललाट! रंग द
भ्राटन घोट! वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ।। 8 ।।

व्याख्या

श्रीवेंकटेश्वर भगवान सकल शुभ लक्षणों से विभूषित किरीट धारण करते हैं। इसलिए वह किरीट सत्किरीट है। वह सोने से बना है। यहाँ कवि सुवर्ण किरीट धारण करनेवाले के रूप में पहले संबोधित करते हैं - हाटक सत्किरीट! ऐसे भगवान के सामने सर्वदेवता (कोटिसमूह) आकर अपने-अपने किरीटों को उनके पाद पद्मों के पास रखकर वंदना कर खड़े हो जाते हैं। समस्त देवताओं के किरीटों को पाद कमलों के पास रखने के बाद उनकी मणिकांतियों से शोभित मूर्ति भगवान वेंकटेश्वर की है, अत्यंत प्रभामूर्ति है (ऐसे भगवान की वंदना भक्त कवि कर रहे हैं)।

पर्वत शिखर के समान गुंफित (उभरा) प्रकाशमान (भास्मान) वक्षःस्थलवाले भगवान हैं। साधारणतः वक्षःस्थल स्वामी का है। कूट (पर्वत) से बहुत कठोर होता है। कवाट (द्वार) विशालता का प्रतीक है। भगवान दृढ़ और विशाल वक्षःस्थल युक्त हैं। कवि ने यहाँ उसी रूप में उनको संबोधित किया है। समस्त लोकों में संचार करनेवाले हैं भगवान। इसलिए वे 'लोकाट' हैं। वे समस्त जगत में विराजित और विस्तारित हैं। श्रीहरि निशाचरों (रात में विचरण करने वाले राक्षस) को तीक्ष्ण रूप से खण्डित करते हैं। स्वामी का ललाट बहुत मनोज्ञ रहता है। मनोहर भासित होता है। केसर आदि सुगंधित द्रव्यों से उनका तिरुनामम् उनके सौंदर्य को द्विगुणीकृत करता है। उस प्रकार के नामम् (त्रिपुंड) को धारण करने के लिए उपयुक्त विशाल ललाट युक्त भगवान का यहाँ कवि स्मरण करवाते हैं। श्रीहरि का वाहन(रथ) गरुड़ है। वे पक्षिराज हैं। गगन संचारी हैं। इसीलिए अनेक रंगों से युक्त गगन (रंगत्+अभ्र) में संचार कर सकनेवाले वाहनवान हैं श्रीहरि। (भक्त की पुकार सुनते हैं और दौड़ आते हैं) ऐसे भगवान को उसी भावना से कवि संबोधित कर रहे है।

विशेष

एक विशेषता है। यहाँ छंद के प्रथम और द्वितीय चरणों में व्याप्त सुदीर्घ समास को भी देख सकते हैं - ''चरणाब्ज निवेशित सर्वदेवता कोटि किरीटकूट रुचि गुंभित भास्वदुरः कवाट!'' इसका अर्थ भी इस प्रकार किया जा सकता है - भगवान के चरणों के पास रखे गए किरीटों के रत्नों की समस्त कांति किरण श्रीहरि के वक्षःस्थल तक पहुँच गयी हैं। (सभी पाठकों की कल्पना पर निर्भर है)।

दंडितवैरिकांड! दुरितव्रज गाढ़तरांधकार मा
र्तांड! भुजाविशाल विजित द्विपतुंड! समग्र शार्ङ्गको

दंड! महोग्रकांड! वरदर्पण गंड! पिचंड पूरिता
जांड करंड! वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ॥ 9 ॥

व्याख्या

शत्रु समूह को दंड़ देने में दक्ष! भक्तों का जन्मजन्मांतरों का पाप-समूह अपने-आप में घना अंधकार समाहित है। ऐसे अंधकार से मुक्त करने में प्रखर मार्तांड समान हैं श्रीनिवास!

हे आजानुबाहु! आपकी भुजाएँ तो हाथी की सूंड के समान लंबी और दृढ हैं। (ऐसी भुजा से आप भक्तों की रक्षा में लीन रहते हैं)। आप का धनुष समस्त लक्षणों से विलसित है। ऐसे शारङ्ग को (भक्त रक्षणार्थ) हमेशा धारण करनेवाले हैं श्रीहरि! अपने कोदण्ड के लिए उपयुक्त महोग्र बाण समुदाय को भी रखनेवाले प्रभु! दर्पण के समान मृदु और निर्मल गालों से सुशोभित! (आप के समान भगवान और कौन हैं आप के अलावा)!

सृष्टि का आकार अंडाकार है। सृष्टिकर्ता ने ऐसे ही इसे सृजित किया है। यह ब्रह्मांड है। इसे सूचित करते हुए भगवान का यह संबोधन है - 'पिचंड पूरिताजांड करंड!' ब्रह्म ने इस ब्रह्मांड को अजांड कहा है। इसे एक घड़े से तुलना करने की भी एक परंपरा है। 'करंड' शब्द का अर्थ है घड़ा - एक बड़ा घड़ा। इसीलिए इसे ब्रह्मांड भी कहते हैं। यह भांड कहाँ है - श्री महाविष्णु के पेट में (पिचंड में) सूक्ष्म रूप में। ब्रह्म ने सृष्टि कार्य को आरंभ करने के लिए पहले श्रीमहाविष्णु के पेट में रखनेवाले विश्वरूप हैं (कवि ने भक्ति से भगवान को इस रूप में संबोधित किया है। नमस्कार किया है)।

विशेष

'द्विपं' शब्द का अर्थ है सूँड! हाथी सूँड और मुँह से पानी पीता है। कवि को यहाँ ''भुजा वैश्याल्य विजित द्विप तुंड'' कहना चाहिए। लेकिन 'भुजाविशाल विजितद्विज तुंड'' ही कहा है। कवियों द्वारा ऐसे प्रयोग कई किये गये हैं।

भागवतानुराग! परिपालितनाग! व्रजांगनैक सं
भोग! पदाब्जराग रुचि पुंज सुरंजित वर्णनीय स
र्वागम मननीमणि शिखांचित भाग! नितांत धैर्य धू
ताग! धृताग! वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ।। 10 ।।

व्याख्या

वैष्णव संप्रदाय में भक्तों को 'भागवत' कहते हैं। श्रीहरि अपनी निंदा सहन कर सकते हैं लेकिन भागवतों की निंदा कभी सहन नहीं कर सकते। भागवतों पर उनका अनुराग कुछ ऐसा ही है। इसीलिए (भक्त) कवि का इस छन्द में प्रथम संबोधन है - 'भागवतानुराग।' आगे का संबोधन 'परिपालितनाग' है। 'नाग' शब्द के दो अर्थ हैं - मगर और साँप! इससे इस संबोधन में दो भक्त हैं - मगर और आदिशेष। भगवान विष्णु ने मगर से गजेंद्र की रक्षा की थी। दूसरी ओर आदिशेष को अपनी शैय्या बनाकर उन पर भी अनुग्रह दिखाया था। गजेंद्र भागवतोत्तम ही हैं। श्रीकृष्ण ने व्रजवनिताओं यानी गोपिकाओं मात्र से ही रास किया था, अन्यों से नहीं। गोपिकाएँ भागवतों की श्रेणी में प्रथम हैं।

विशेष

समस्त वेदों (सर्वागमों) का परमार्थ है भगवत् तत्व का निरूपण और साथ-साथ स्तवन! इसी को हमारे वेदांतियों ने कवितामय शब्दों में

कहा है कि भगवान वेदों के नुकीले कोणों में रहते हैं। वेदांत का अर्थ ही है वेद + अंत = वेद शिखाएँ। भगवान वहाँ विराजमान रहते हैं। वेदांतों का एक और अभिधान है 'उपनिषद्।' सर्व वेद हमारे लिए वंदनीय हैं, अर्थात् स्तुत्य हैं। कवि ने ऐसे स्तुत्य सर्व आगमों को उत्तम नारी मणियों के रूप में माना है। वेद चार हैं - चार मणियाँ हैं (मानिनी मणि - स्त्रियाँ हैं)। उनके जूड़ों की सीमाएँ (शिखांचितभाग) भगवान के विहार स्थल हैं - वास स्थल हैं। इसीलिए भगवान राग रंजित पद पल्लवों से (पद्म राग कांतिपुंज से) सर्वागम मानिनी मणियों के शिखाचित भागों को सुरंजित करते हैं। (यह अति अद्भुत कल्पना है) ऐसे समास युक्त स्तवन से कवि यहाँ भगवान की वंदना कर रहे हैं। (धैर्य की उपमा) कवि गण पर्वत का साथ देते हैं। स्वामी के धैर्य के सामने पर्वत भी ठहर नहीं सकते हैं। वे धूल बनकर उड़ जाते हैं। भगवान के पास पर्वतों की ऊँचाई और अटल दृढ़ता से बढ़कर धैर्य रहता है। ऐसे धैर्यवान के रूप में श्रीहरि (श्रीवेंकटेश्वर) को याद कर वंदना कर रहे हैं। कृष्णावतार में आपने गोवर्धन पर्वत को अपनी छोटी उँगली पर उठाकर गोप-गोपिकाओं, गायों और अन्यों की रक्षा की थी न! इसीलिए कवि ने उन्हें (धृत+आग) 'धृताग' कहकर संबोधित किया हैं।

श्रीतरुणी समेत! नत जिष्णुमुखामरजात! सद्गुणो
पेत! किरीटिसूत! पटु भीकरसायक मर्दिताहित
व्रात! त्रिलोकपूजित! रसवन्मुरलीमृदुगीत! पातका
ब्दाततवात! वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ।। 11 ।।

व्याख्या

श्रीलक्ष्मी के साथ हमेशा मिलकर रहनेवाले! (जिष्णु यानी इंद्र हैं।) इंद्र सहित समस्त देवतागण आपके सामने झुकते हैं। ऐसे देवता समूहवाले

भगवान! समस्त सद्गुणों (अच्छे गुणों) से युक्त, हे पार्थ सारथी! (अर्जुन के रथ के सारथी) बहुत ही पैने और नुकीले बाणों से शत्रुसमूह को नाश करनेवाले!

तीनों लोकों में पूजित (त्रिलोक पूजित)! रस धुनि को प्रवाहित करनेवाली मुरली गीतों को आलापनेवाले भगवान! महा पाप (मेघ या, बादल), जब भक्तों को घेर लेते हैं तब महा झंझावात (तूफान) के समान होकर उन्हें तितर-बितर करनेवाले देव! हे वेंकटनगाधिपति! तुम्हें शत-शत वंदन स्वामी।

विशेष

रथों को तैयार करनेवाले और चलानेवाले को सूत कहते हैं। सूत का एक अर्थ उस पुत्र से है जो सच में अपना पुत्र नहीं होता। किसी काम के लिए प्रार्थना करनेवाला भी सूत होता है। ऐसा व्यक्ति जो नकारने की शक्ति से रहित होकर काम करने को सहमत हो जाता है, उसे भी सूत कहते हैं। ऐसों के रक्षक श्रीनिवास हैं। यहाँ भावना मुखरित होती है।

बाण कला प्रवीण! श्रित पालन कार्य धुरीण! पत्रि कं
खाण! मदासुरासु हृदखंडकृपाण! समस्त चेतन
त्राण! सरोजबाणविमत प्रकटोज्ज्वल बाण! नित्य क
ल्याण! पुराण! वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ।। 12 ।।

व्याख्या

'कला' शब्द विद्या का पर्याय है। इस अर्थ में विद्या साहित्य में भी प्रचलित है। कलार्थ का अर्थ विद्यार्थी है। बाण कला का अर्थ धनुर्विद्या है। इस विद्या में श्रीहरि निपुण थे। इसलिए 'बाण कला प्रवीण!' से वे

संबोधित हैं। आश्रितों की रक्षा में अग्रगण्य हे देव! 'कंखण' शब्द का अर्थ घोड़ा है, यहाँ घोड़ा, वाहन का द्योतक है। 'पत्रि' का अर्थ पंख है। इस संबोधन में गरुड का संकेत है। भगवान वेंकटेश्वर पक्षिवाहन पर आरुढ़ हैं। इसलिए पत्रिवाहन! संबोधन का यहाँ अर्थ है मदमस्त राक्षसों का वध करने के लिए उपयुक्त खड्गधारी हे श्रीनिवास! वे मदमस्त असुरों के हृत् खंडन कृपाणवाले हैं।

यहाँ चेतन का अर्थ प्राणी है। हे समस्त प्राणियों के रक्षक! आप सरोज (पद्म)बाणों का संधान करनेवाले कामदेव हैं। कामदेव के वैरि शिव जी हैं = सरोजबाण विमत हैं। ऐसे उज्जवल शिवजी के लिए श्रीहरि स्वयं बाण बने हैं। त्रिपुरासुर संहार में शिव बाण बने, विष्णु का संधान किया था इसलिए श्रीहरि शिव बाण हैं। तिरुमल गिरि पर श्रीनिवास का नित्य कल्याण (विवाह) महोत्सव संपन्न होता है। अतः वे नित्य कल्याण चक्रवर्ती हैं। स्वामी अत्यंत पुरातन आदि देव हैं। इसलिए उनकी उपाधि 'पुराण' है। ऐसे महान नामों के संबोधन से इस छन्द में भगवान श्रीनिवास की वंदना की गयी है।

विशेष

त्रिपुरासुर संहार के लिए शिव जी जब निकले, तब समस्त विश्व उनका रथ बना था। चारों वेद (ऋक, यजुः, साम और अथर्व) रथ के घोड़े बने। ब्रह्म स्वयं सारथी बने। आदि शेष धनुष की डोर बने। श्रीहरि बाण बने हैं। यह श्री शिवमहापुराण की गाथा है। यहाँ एक अद्भुत कल्पना है। कल्पना एक सुंदर चित्र के रूप में प्रकाशमान है। (रुद्रसंहिता - युद्ध खण्ड - 8, 9 अध्याय)

दास मनोबऽजवास! विनतत्रिदशागशरास! सत्कला
भ्यास! सुमहन्मणि मंडनभास! नंदित

व्यास! सुवर्णवास! निगमांतनिवास! शशांक चंद्रिका
हास विलास! वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ।। 13 ।।

व्याख्या

हे अपने भक्तों के मानस कमलों में वास करनेवाले! त्रिदश और अंगरक्षकों से साष्टांग प्रणाम पानेवाले! (त्रिदश का अर्थ है हमेशा तीस वर्ष की आयु को न पार करनेवाले अमृत सेवित देवतागण। ये नित्य यौवन रहते हैं।) 'अग' का अर्थ अचल यानी पर्वत। पर्वत को ही धनुष (शरासन) के रूप में स्वीकार करनेवाले हैं शिवजी। अगशरासन शिवजी से भी वंदनाएँ स्वीकार करनेवाले हैं श्रीनिवास! सत्कलाएँ यानी सर्व विद्याएँ अर्थात् समस्त वेद, शास्त्र और पुराणों को अपने मनोकमलों में रखनेवाले, मनोपद्मसदनों में वास करनेवाले! महत्वपूर्ण मणि भूषणों की कांति से युक्त! व्यास महर्षि को आनंद प्रदान करनेवाले! सुवर्ण कांतियों से विलसित आनंदनिलयवासी! हे कनक-सुवर्णवासा! वेदों (निगमागमों) के कोनों में यानी उपनिषदों में रहनेवाले! शश का अर्थ है खरगोश। इसे सिंह के रूप में स्वीकार कर अपनी चंद्रिकाओं को प्रसरित करनेवाले चंद्रमा शशांक हैं। उनकी कांतियों से बढ़कर मंद मुस्कानों के विलास से शोभित! हे श्रीनिवास! हे नगाधिपति!

विशेष

इस छन्द में अंत्यानुप्रास (तुक) के लिए वास, निवास शब्द प्रयुक्त है। यहाँ ध्यान देने की बात है कि भक्ति में पुनरुक्ति सहज और दोष रहित होती है।

''सत्कलाभ्यास मनोब्जवास!'' के संदर्भ में एक और अर्थ भी निष्पन्न होता है - कमल को ही अपना वास बनानेवाले ब्रह्म और

वेदाध्ययन संपन्न भक्तों के मन में वास करनेवाले श्रीनिवास का यहाँ ब्रह्म तत्व के रूप में साक्षात्कार है। यानी सत्कलाभ्यास करनेवालों के मन में निवास हे ब्रह्मत्व स्वरूपा! (यह सुंदर संबोधन है)

वेददरद्विनोद! सुरबृंदमयूर पयोद! निर्मला-
मोद! त्रिलोक पूजित समुज्ज्वल पाद! गजेंद्र खेद वि
च्छेद! विनिर्गताखिल विशिष्ट विषाद! वृषोरगादि म
र्त्यादिविभेद! वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ।। 14 ।।

व्याख्या

पर्वत सम वेदों के सानुवों (तराइयों) में आनंद पानेवाले। देवता वृन्द रूपी मयूर समूहों के लिए मेह सदृश रूप। (मेघों को देखकर मोर आनंदपूर्वक नाचता है।) हे निर्मलानंद स्वरूप! त्रिलोकवासियों से अर्चना प्राप्त करनेवाले उज्जवल कदमों से शोभित श्रीनिवास! गजेंद्र के दुःखहरण! सकल भक्तों और जीवों में व्याप्त विषाद (दुःख) को दूर करनेवाले दयानिधि! पशु-पक्षी, कीडे-मकोड़ों और मनुष्यों को मारकर भक्षण करनेवाले राक्षसों के विनाशक स्वामी! हे वेंकटनगाधिपती! हे विलसत्कृपामती!

विशेष

'दरद्' शब्द कुछ अप्रचलित शब्द है। इसका प्रचलित अर्थ है विष और चिल्लानेवाला! पर्वत की तराईयों के लिए इस शब्द का प्रयोग होता है। इस अर्थ को कोशों ने दिया है।

वसुमय वास! वासवभव दुहिणामर भासमान मा
नस कज हंस! हंस वदन प्रपद प्रतिवीर चारु सा

रस विमलाक्ष! यक्षय शरप्रहतारिविरान्ववाय! वा
यस मदघाति! वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ।। 15 ।।

व्याख्या

सुवर्णमय (सोने से भरपूर) आनंदनिलयवासी! इंद्र (वासव) शिव (भव) ब्रह्म (द्रुहिण) आदि देवताओं के मानस को भासित (प्रकाशमान) करनेवाले कंजों ('क' यानी जल, 'ज' यानी जन्मित = कमल) वाले सूर्य (देवताओं के हृदय कमलों को विकसित करनेवाले सूर्य श्रीनिवास हैं)।

स्वामी कभी क्षय (कम) नहीं होनेवाले बाणों से शत्रुओं के वीर समूहों के वंशों को नाश करनेवाले हैं। इस रूप में श्रीनिवास यहाँ संबोधित हैं। काकासुर (वायसासुर) के गर्व का दमन करनेवाले हैं श्रीनिवास। यहाँ रामावतार की घटना को याद करें। राम ने सीता मैय्या को कष्ट पहुँचानेवाले काक रूपी राक्षस को आहत किया था। हे वेंकटनगाधिपती! विलस्त्कृपामती!

विशेष

15 वें और 16 वें छन्दों में अंत्यानुप्रास के साथ-साथ मुक्तपदग्रस्त अलंकार का प्रयोग अत्यंत सुंदर है - जैसे प्रथम चरण में 'वास' के बाद 'वासव'। मुक्तपदग्रस्त अलंकार में पहले समाप्त होने वाले समास से दूसरे समास का प्रथम शब्द आरंभ होता है। कभी-कभी शब्द भी इसी प्रकार प्रयुक्त होते हैं जैसे द्वितीय चरण में 'हंस' शब्द तुक और अनुप्रास से गति मनोहर होती है।

'हंस वदन प्रतिवीर चारु सारस विमलाक्ष' समास के द्वारा भगवान का स्मरण अति सुंदर है। हंस की चोंच तथा पैरों का अग्र भाग लाल वर्ण

का होता है (बहुत सुंदर होते हैं)। उसकी होड़ में विजित हो सकनेवाले भगवान श्रीनिवास ही हैं। ऐसी आँखों से वे भासमान हैं। इतना लंब! समास क्यों? कवि ने प्रथम १६ छन्दों को संबोधनों से ही लसित किया है। ये षोडश सेवाओं (उपचारों) के संकेत हैं। इन सोलह संबोधनों से युक्त छंन्दों में 'मकुट' संबोधनों को छोड़कर कुल संबोधनों की संख्या 107 है। पूजा में अष्टोत्तर शत नाम पूजा प्रसिद्ध है। इस छंन्द में इतने बड़े समास का भी एक संबोधन ही होता है। इसके साथ कुल संबोधनों की संख्या 108 होती है। ''वायस पदघाति'' संबोधन अंतिम चरण में मकुट संबोधन से मिलनेवाला अंत्यानुप्रास है।

शरधि गंभीर! भीरहित शत्रु गिरींद्र शतार! तारका
वररुचि सार! सारसभव स्तुत सद्गुणवार वार (ण
स्फुर) दवतार! तारक यशो विभवोज्ज्वलभार भा रसा
हरण विदार! वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ।। 16 ।।

व्याख्या

इस छंन्द को पाँच संबोधनों में विभाजित कर देखें तो अष्टोत्तर शत नाम अर्चना से विभूषित मिलती है। यहाँ कुंडलीकरण में रखे तीन अक्षर(णस्फुर)पूर्व पंडितों का पूरित किया अंश लगता है। 'वारण' का अर्थ हाथी है। भगवान ने हाथी का अवतार नहीं लिया। इसलिए 'विस्फुरदवतार' में बदल कर देखना ठीक होगा। इस छन्द में मुक्तपदग्रस्त अलंकार का अनुपालन किया गया है।

समुद्र सम गंभीर! भय (भी) रहित होकर सामने खड़े वज्रायुध (शतार) सम! वज्रायुध से इंद्र ने पर्वतों के पंख काट दिए। तारकों के अधिपति चंद्र की कांति का सार चाँदनी सम स्वभाववाले! (दर्शनाभिलाषी

भक्तों की आँखों को चाँदनी सम आनंद प्रदान करनेवाले)। ब्रह्मदेव (सारसभव) के द्वारा संस्तुत सद्‌गुणों से विलसित अवतार धारण करनेवाले! (इन समस्त सद्‌गुणों की निधि हैं श्रीनिवास)

नक्षत्रों (तारों) का यशोविभव भगवान का है। तारकों की कांति शाश्वत है। यहाँ एक और अर्थ भी लिया जा सकता है। तारक का अर्थ तारनेवाला है। 'तारक यशो वैभव' से मंडित श्रीवेंकटेश्वर हैं। 'भा' का अर्थ प्रकाश है। कांति के रस सार को हरण करनेवाले हैं। अर्थात् अंधकार (अज्ञान) को अपने तारक ज्ञान से प्राप्त कीर्ति से हरण करनेवाले भी हैं। यहाँ मोक्ष-भवतरण-तारक होता है (भव्य 108 नामों की संस्तुति के बाद भगवान की छन्दार्चना है)।

गुरुचरणांबुजातमुलकुं ब्रणमिल्लि समस्त सत्कवी
श्वरुल मदिं दलंचि बुधवर्गमुलं गोनियाडि सद्रसो
त्करमुग वृत्तपद्य शतकंबु नोनर्तु बरिग्रहिपुमी
यरमर लेक वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ।। 17 ।।

व्याख्या

हे वेंकटनगाधिपती! सर्वप्रथम मैं अपने गुरुओं के पाद पद्मों को नमन कर रहा हूँ। साथ-साथ मुझसे पूर्व के सत्कवियों का मन में ध्यान कर रहा हूँ। तत्पश्चात् परंपरा से प्राप्त संप्रदाय का अनुपालन करते हुए भक्ति रस (आगार) बनने योग्य रूप में वृत्त छन्दों में (प्रधानतः उत्पलमाला और चंपकमाला छंदों में) एक शतक का निर्माण कर आपको समर्पित कर रहा हूँ। बिना किसी प्रकार के दुराग्रह या पूर्वाग्रह के मेरे इस प्रयास को स्वीकार कीजिएगा प्रभू।

विशेष

भक्ति एक आंतरिक प्रबल भाव है। इसे कुछ लोगों ने उत्कट रूप में प्रकट किया है। परंतु अंततोगत्वा उसे एक रस के रूप में मान्यता प्रदान करने में भी किसी को आपत्ति नहीं रही। इतना ही नहीं श्रृंगारादि रसों के साथ भक्ति रस को उत्तमोत्तम स्थान भी प्रदान किया है। कवि ने इसी आधार पर भक्ति रस को सत् + रस = सद्रस कहा है।

सकल कलाविशेषमुल जाड लेरिंगिनवाड गानु, ता
वक कमनीय निर्भर कृपारस भासुर वीक्षणाप्तिचे
सुकवित जेप्प बूनिति यशोनिधि! यिंकिट नन्नु जंटवा
यक फलमिम्मु वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ।। 18 ।।

व्याख्या

हे वेंकटनगाधिपती! हे यशोनिधि! इस संसार में अनेक विद्याएँ विद्यमान (कलाएँ) हैं। उनमें अनेक विशेषताएँ और विलक्षण गुण भी हैं। मैं उन सबको जानता नहीं हूँ। उनका पता भी मुझे नहीं है। फिर भी आप पर कविता करने के लिए मेरा मन उद्यत हो रहा है। इसका कारण आपका कटाक्ष वीक्षण मुझ पर प्रवाहित होना मात्र है। आपकी करुणा दृष्टि अत्यंत कमनीय है क्योंकि उससे दया रस छलकता रहता है तथा भासमान (प्रकाशित) होता रहता है। वे मुझ पर प्रवाहित हुई हैं। इसलिए पांडित्य के नहीं होने पर भी पद्य कविता (छंदोबद्ध कविता) करने का साहस कर रहा हूँ। अब मुझे आप अकेला मत छोड़िए। मेरे साथ रहकर (कविता को संपन्न रूप में अवतरित होने तक) कार्य संपन्न कीजिए। हे श्रीनिवास! इसका उपयुक्त फल भी मुझे अनुग्रहित (पहुँचाइए) कीजिए।

विशेष

अपने को अकिंचन प्रकट करना भक्ति मार्ग में भक्त का प्रथम लक्षण माना जाता है। सभी भक्त कवियों ने इस मार्ग का अनुसरण किया है। 'मेरे पास कोई साधन संपत्ति नहीं है। हे प्रभु आप ही मुझे संभालिए और रास्ता पार कराइए।' इस प्रकार का निवेदन भक्तकवि परंपरा में मिलता है।

विकसित पुष्पदाममुग विस्फुरितोत्पलचंपकाभिधा
नक घनवृत्त पद्यमु लोनर्चि दृढंबुग भक्तलोक पा
लकुनकु नीकु निच्चेद निलापति! दीनिकि नी वसूय से
यक गयिकोम्मु वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ।। 19 ।।

व्याख्या

हे इलापति (भू सति वल्लभ) श्रीवेंकटेश्वर! उत्पलमाला और चंपकमाला छन्दों में मैं तेलुगु में कविता मालाएँ बनाकर आपको अर्पित करूँगा। (तेलुगु साहित्य में संस्कृत के ये दोनों वृत्त कवियों के द्वारा प्रीति से स्वीकृत हैं।) ये वृत्त हैं, घन वृत्त हैं, प्रसिद्ध वृत्त हैं। उत्पल यानी कमल और चंपक यानी चमेली पुष्प हैं। उनकी मालाएँ अलग-अलग बनाकर (रचकर) आपको अर्पित कर रहा हूँ। यह वृत्तों की फूल माला है। आप भक्तों के रक्षक हैं। भक्त लोक पालक हैं। इस कारण मैं आपको अर्पित कर रहा हूँ। वह भी दृढ़ चित्त होकर अर्पण कर रहा हूँ। वास्तव में आपकी पद सेवा में अर्पित है। इस पर किसी प्रकार की ईर्ष्या के बिना स्वीकार कीजिएगा, दया भाव से स्वीकार कीजिए मेरी इस छन्द पुष्प माला को।

छन्दों की माला का अर्पण उक्ति चमत्कार युक्त है। छन्द नाम और फूलों के नाम की माला अच्छी नहीं लगती है क्या? (शायद न भी हो)

प्रार्थना पूर्वक स्वीकार करने की बात यहाँ है। साथ ही बिना ईर्ष्या या असूय के स्वीकारने की बात भी प्रार्थना में सुंदर लगती है।

विशेष

असूया या ईर्ष्या करते समय दूसरों के गुण भी दोष लगते हैं। इसीलिए कवि ने माला में दोष निकाले बिना स्वीकारने की बात यहाँ की है।

इम्मुल नादु कब्बमु रहिन् रसवंतमु गाकयुन्न नं
दम्मु नीदु वर्णन घनम्मुग नेटूलनगल्प वृक्षमुल्
कोम्मलु वंकलैन गड्डु गुज्जयिनन् गोरतौने दानि यो
ग्यम्मु गणिंप? वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ।। 20 ।।

व्याख्या

हे वेंकटनगाधिपती! मेरे काव्य में कविता चाहे उचित रीति से न हो, रस युक्त न हो, रचना की दृष्टि से विशिष्ट न हो, फिर भी यह शतक अत्यंत सुंदर रचना ही है। क्योंकि इसके हर छन्द में आपकी विशिष्टता, महानता और महत्ता ही वर्णित है। कल्पवृक्ष को लीजिए। उसकी डालियाँ कितनी ही वक्रताओं से युक्त क्यों न हो, कल्पवृक्ष नाटा ही क्यों न हो, क्या उसकी सामान्य कमी उसके मूल्य को आँकने में अड़चन डालनेवाला होगा? हे भगवान! मेरा शतक आपके चरित्र को अपने में लेकर चल रहा है। इसीलिए इसमें कितने ही दोष क्यों न हों, कभी वे इसकी योग्यता और मूल्य को कम करनेवाले नहीं होंगे (अतः हे स्वामी इसे स्वीकार कीजिए)।

विशेष

इस छन्द में 'अंदमु'(सुंदरता) केवल एक विशेषण मात्र है। परंतु छन्द में शब्द का प्रयोग कविता के विशेष धर्म के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। यह विशेष धर्म भगवान श्रीनिवास के गुणगान से मण्डित होकर उज्जवल है।

सललितामैन मी चरण सारसमुल् विकसन्महोत्पलो
द्विलसित चंपक प्रथित वृत्त सुवर्ण सुमालि बूज लिं
पलवड जेसि भासुर पदार्थ मुपायन मिच्चेदन् मुदं
बलर गोनुंडु वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ॥ 21 ॥

व्याख्या

हे कृपामती! आपके चरण कमल अत्यंत सुंदर, कोमल, मृदुल हैं। उन पाद पद्मों को विकसित उत्पलों (उत्पलमाला छन्दों) और चंपकों (चंपकमाला छन्दों) के समूह (प्रथित वृत्त = अर्थवान छन्दों) से अच्छी तरह अर्चना करूँगा। पूजा के बाद उनमें निक्षेपित (निरूपित) आकर्षित करनेवाली भावनाओं को नैवेद्य के रूप में अर्पित करूँगा। हे स्वामी! मेरी इस पूजा को सानंद स्वीकार कीजिएगा (साथ-साथ मुझे अनुग्रहीत कीजिएगा)।

विशेष

''सुवर्ण सुमालि'' शब्द में रुचिर अर्थ समाहित है। सुवर्ण सुम समूह एक अर्थ है, अर्थात् अच्छे रंगवाले पुष्प समूह। सुवर्ण का एक और अर्थ सुंदर शब्द अर्थात् सुंदर भाव युक्त शब्द भी है। सुंदर पुष्प उत्पल और चंपक हैं तो सुवर्ण वृत्त उत्पलमाला और चंपकमाला हैं। साधारणतः भगवान को भक्त ''तुम, तू'' सर्वनामों से संबोधित करता है। लेकिन

यहाँ कवि 'आपका' प्रयोग कर रहे हैं। यह विशेषता आगे के छन्दों में भी विस्तार से वर्णित है।

जलजभवादुलैन गनजालनि मिम्मु गुरुंडु मंत्रि ने
च्चेलि भविक प्रदायकुडु चेरुव चुट्ट मटचु ब्रेम वा
टिल दोलि बांडवेयुलु नटिंचिर टंतटि भाग्यरेख मा
कलवडुगाक वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ॥ 22 ॥

व्याख्या

हे वेंकटनगाधिपती! ब्रह्मादि देवताओं (जलजभवादि) को भी आपका (आसानी से) दर्शन पाना कठिन है। ऐसे में, आपसे धर्मराजादि (युद्धिष्ठिर आदि पांडव) ने कितने प्रेम से, स्नेह से व्यवहार किया और आपसे किस प्रकार मिल गये हैं। उन्होंने आपको अपने गुरू के रूप में पाया, अपने मंत्री के रूप में देखा। अपने स्नेही के रूप में पाया। अपने को सभी प्रकार से शुभ, अच्छाई पहुँचानेवाले के रूप में माना। ये सभी भावनाएँ उनके सरल, सहज व्यवहारों में व्यक्त हुए। इस रूप में उनके व्यवहार संभावित होने का एकमात्र कारण आप ही हैं। हे श्रीनिवास! इस प्रकार का भाग्य कुछ हमें भी प्रदान कीजिएगा।

विशेष

इस छन्द में व्यवहार के लिए 'नटन' शब्द का प्रयोग हुआ। नटन करना या नाटक करना सामान्य व्यवहार में अभिनय अर्थ में स्थिर है। साधारणतः नाटक के अभिनय में अभिनेता पात्र में लीन होकर जीता है। इसी प्रकार पांडवों ने श्रीकृष्ण में लीन होकर व्यवहार किया है। युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण से कहा था - 'हे महानुभाव! हमारे पिताश्री हम पर आनेवाली विपत्तियों से हमें तारनेवाले के रूप में आपको दिखाकर चले

गए हैं। अतः आप उन कार्यों का निर्वाह कीजिए।' इसी भूमिका में कवि ने इस छन्द की कल्पना की है और वेंकटेश्वर से अपना संबंध निर्वाह (भक्त से भी) करने की प्रार्थना की है। यहाँ याद रखने की बात है कि भक्ति और भगवद्विषयक प्रेम में कोई अंतर नहीं है।

अंचितमैन काव्य रस माररसि कांचिरसज्ञुनटूल मो
दिंचुने मुष्कराधमुडु देवनदी जलजात कांडमुलू
गांचि मुदंबु बोंदुट पिकंबुनकेन्नडु शक्यमौने रा
यंचकु गाक! वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ।। 23 ।।

व्याख्या

हे भगवान श्रीतिरुमलनाथ! एक सुंदर काव्य हो, उसमें रस भरा हो, तो उसे पहचानकर केवल रसज्ञ (पाठक) ही आनंद प्राप्त कर सकता है। लेकिन एक मुष्कराधम (मूर्ख) क्या कभी उस प्रकार रस का ग्रहण कर सकता है? इससे तुल्य एक दृष्टांत लीजिए। आकाश गंगा (देवनदी) में विकसित सुंदर पद्म समूह के कांडों को देखकर आनंद पाने की योग्यता केवल हंस (राजहंस) को ही है। क्या कभी पिक (कोयल) उसका स्वाद पा सकता है? (भक्ति भावनाओं से युक्त काव्य का आस्वादन केवल रसज्ञ भक्त ही कर सकता है। अन्य पामर नहीं)

विशेष

काव्य के रसास्वादन के लिए उपयुक्त अभ्यास चाहिए। वह अगर नहीं हो तो रसास्वादन संभव नहीं। वह छन्द को गा सकता है जैसे कोयल गाता है, लेकिन उसका आस्वादन नहीं कर सकता यानी कवि का मंतव्य है कोयल अपने गीत का आस्वादन नहीं करता वह यों ही कुहू-कुहू करता है।

एंच वशंबु गाक नटियिंचेडु नादु मनंहनेटि रा
यंचनु बट्टि नीदु चरणांबुज पंजरपालि बेट्टि म
न्निंचु कटाक्ष लील ननु निच्चलु नी पदपद्मभक्तुडे
यंचु गणिंचु वेंकनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ।। 24 ।।

व्याख्या

हे वेंकटेश्वर! ध्यान से अनुशीलन करने पर मुझे पता चल रहा है कि मेरा मन रूपी हंस (राज हंस) मेरे वश में नहीं रह रहा है। वह अपनी इच्छा के अनुसार उछल-कूद रहा है। मुझ पर दया कर आप उसे रोकिएगा। उसे पकड़कर अपने पादपद्म रूपी पंजर में डाल लीजिएगा। अपने कटाक्ष वीक्षणों के विलास से क्षमा भी कीजिए। आपके अपने पदकमल सेवक के रूप में मुझे मानिए। यही मेरा विनम्र निवेदन है स्वामी।

विशेष

यहाँ कवि भगवान पर मन के नहीं लगने के कारण उनसे क्षमा याचना कर रहे हैं। अपने से हुई गलती को क्षमा करने की प्रार्थना भी कर रहे हैं। अपने को श्रीनिवास का भक्त घोषित कर रहे हैं। साथ-साथ मन को क्षमा करने की प्रार्थना भी यहाँ औचित्यपूर्ण है। भक्त (कवि) इस प्रकार की भावनाओं से मंडित रहते हैं।

वंचन जेयनेल सुरवल्लभ! ननू गरुणार्द्र दृष्टिवी
क्षिंचक नी वनादरण चेसिन नेव्वरू नन्नुनिंक र
क्षिंचेडिवारु कान निरसिंपक नापयि नुंचु मी कटा
क्षांचल लील वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ।। 25 ।।

व्याख्या

हे देवताओं के नायक! हे सप्तगिरीश! मुझे वंचित करने की आवश्यकता क्या है? आपकी दृष्टि करुणा भरी आर्द्र दृष्टि है। भक्तों के दुःखों को देखकर आपकी आँखें दया से गीली होती हैं न! ऐसी नरम दृष्टियों से आप मुझे क्यों नहीं देख रहे हैं? ऐसा अनादर दिखाएँगे तो मेरी रक्षा करनेवाला और कौन है? (मुझे तो कोई दिखाई ही नहीं दे रहा है) अतः मुझे निराश्रित किये बिना, रक्षा करने का दायित्व आप ही का है। आपके कटाक्षों के अंचल से प्रवाहित होनेवाली कृपा दृष्टि मुझ पर प्रसारित कीजिए स्वामी!

विशेष

अनन्य भक्ति उत्तमोत्तम है। 'अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं मम' कहने पर ही भगवान श्रीगिरीश करुणामयी होंगे। तब तक परीक्षा लेते ही रहेंगे।

कंटि नगंबु बुष्करिणि गंटि, समस्त वनाटबृंदमुन्
गंटि किरीट कुंडल विकासित चारु मुखारविंदमुन्
गंटिनि मिम्मु, मी (करुण) गंटि, गरद्वयि मी पद्वयम्
बंटग गंटि, वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ।। 26 ।।

व्याख्या

हे तिरुमलेश! आँखों को तृप्ति प्रदान करनेवाले वेंकटनग को मैंने देखा। स्वामी पुष्करिणी का दर्शन भाग्य पाया। उसमें स्नात होकर मंदिर के पास आया। वहाँ वानर समूह को देखा। मंदिर में पहुँचा। सुवर्ण मकुट और कुंडलों से शोभित आपके मुखारविंद का दर्शन हुआ। (आपका दर्शन भाग्य मुझे आपकी कृपा से मिला) अपने दोनों हाथों से आपके पद

कमलों (द्वय) को छू सका। यह भाग्य अन्यों को बहुत मुश्किल से ही प्राप्त होता है। सन्निधि में आपकी वंदना कर सका। यह सब आपकी कृपा से मुझे प्राप्त हुआ है स्वामी। (वास्तव में मैं आपका कृपा पात्र बन सका हूँ) यह मेरे लिए अहोभाग्य है।

विशेष

एक समय तिरुमल पर्वत पर अनेक वानर (बंदर) वास करते थे। उनको देखकर भक्त उन्हें राम जी की वानर सेना समझकर आनंद का अनुभव करते थे। वे किसी को कष्ट भी देते नहीं थे। फल आदि दें तो पास आकर स्वीकार करते थे। भगवान की शरण में जाकर ''मैंने देखा'' (कंटिनि) कहता भक्तों की सहज भावना को व्यक्त करता है। अनेक भक्त कवियों ने इस क्रिया का विरल प्रयोग किया है। उनमें प्रसिद्ध वाग्गेयकार (पद्यकार) कवि अन्नमाचार्य तथा तेलुगु भागवत के रचनाकार भक्त कवि पोतना हैं।

बंटुग नेलिकोम्मनुचु बल्मरु नेंतयु वेडुकोंटि ग्रे
गंट दयारसं बोलुकगंगोनुमंटि रमाधिनाथ! मी
वंटिमहाप्रभुम् गोलुचु भाग्यमु गंटि भवार्तुलिंक न
न्नंट वटंटि - वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ।। 27 ।।

व्याख्या

हे रमापति! (रमाधिनाथ)! मैंने अनेक बार आपसे मुझे सेवक के रूप में स्वीकारने के लिए प्रार्थना की है। दया रस प्लावित दृष्टि से आप मुझे देखिए। मेरी विनती है कि आपकी कृपा दृष्टि मुझ पर हो। इस प्रकार की मिन्नत भी मैंने आपसे की है। आप जैसे महाप्रभु की सेवा करने का सौभाग्य कितनों को मिलता है स्वामी! यह मुझे मिला है। अब

मुझे विश्वास हो गया है कि सांसारिक दुख-दर्द अब मुझे छूनेवाले नहीं हैं। बस अब सब कुछ आपके हाथों में ही है। अब मेरे उद्धार का भार आप पर ही है प्रभु।

विशेष

कवि यहाँ स्पष्ट घोषित कर रहे हैं कि श्रीवेंकटेश पर कर्तव्य भार छोड़ उनकी सेवा में रत रहो तो कोई भी पुनर्जन्म रहित मुक्ति पा सकता है। यही कवि की भी आशा है।

कंटकमैन यत्तुलुव काकमु गाववे यल्लनाडु नि
ष्कंटकमैन नी मरुगु जय्यन जोच्चिवति नेडु, नन्नु ग्रे
गंटनु जूडु, मी चरणकंजमु तोडु, ननुन् भरिंप मी
कंटेनुलेडु - वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ।। 28 ।।

व्याख्या

हे श्रीहरी! आपके पास एक कंटक सम शत्रु के रूप में पहले एक कौए ने व्यवहार किया था। त्रेता में काकासुर सीता मैया को दुःख देकर स्वामी के क्रोध का कारक बना था। उस पर राम ने ब्रह्मास्त्र छोड़ा। वह समस्त लोकों की ओर अपने आप को बचाने के लिए दौड़ पड़ा। अस्त्र ने उसका हर लोक में पीछा किया। अंत में वह राम के पद कमलों पर ही आ गिरा। तब राम ने उसे क्षमा कर दिया। आपने उस कौए को दयार्द्र हृदय से छोड़ दिया न! सिर्फ एक आँख मात्र का नुकसान ही हुआ। ब्रह्मास्त्र का प्रयोग निरुपयोग नहीं होता है न! इसलिए अब मैं आपकी शरण में आया हूँ। मैंने कोई ऐसा उद्दंड़ काम नहीं किया है। मुझ पर आपकी कृपा दृष्टि डालिए। आपके पाद पद्मों की कसम खाकर कह रहा हूँ कि मेरी रक्षा करने के लिए आपके अलावा समर्थ देव और कोई नहीं है, प्रभू! आपको ही रक्षा भार संभालना होगा।

विशेष

काकासुर ने भगवान का अपकार सोचा था। ऐसी नाचीज़ पर ही क्षमा कर दया दिखानेवाले प्रभु हैं तिरुवेंकटनाथ। भक्ति से उनकी सन्निधि में जानेवाले हर एक के उद्धार का भार प्रभु अवश्य अपने कंधों पर लेते हैं। यही कवि (भक्त) का विश्वास है। (सब भक्तों का विश्वास भी यही है)

इम्मु फलप्रदान मिक निम्मुल नेन्नकु ना योनर्चु ने
रम्मु नरादि भक्त निकरम्मु गृपारस दृष्टिजूचि श्रे
यम्मु लोसंगि नट्टु लनयम्मु ननुं गृपगाववेमि न्या
यम्मु करम्मु वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ।। 29 ।।

व्याख्या

हे भगवान्! मैंने आपकी स्तुति की है। उसके अनुरूप फल मुझे दीजिएगा। मैंने जो भी अपराध किया है, मुझ में जो भी कमियाँ हैं, उनकी ओर मत देखिए। उनको गिनिए ही मत! अर्जुन (नर) आदि भक्त समूह को आपने दया रस सिक्त हृदय से देखा है। उनकी रक्षा की है तथा उनके संरक्षण का भार वहन किया है। मुझे उनके समान समझकर अनुनित्य (हमेशा) संरक्षित क्यों नहीं करते हैं? क्या यह आपके लिए न्याय सम्मत होगा? मेरी ओर अनादर का भाव रखना ठीक नहीं है प्रभु। मेरी प्रार्थना पर ध्यान देकर मुझे तारिएगा।

विशेष

भगवान से क्षमा याचना करते हुए उनसे प्रश्न करना भक्तिभाव के एक विशिष्ट पक्ष को दर्शाता है। प्रेय का संबंध इह (मूल) लोक सुख से

और श्रेय का संबंध परलोक सुख से मानने की एक परंपरा है। भक्त भगवान से श्रेय और प्रेय की माँग करता है।

सम्मदलील दासुलकु सौख्यमुलिच्चेडि मी यडुंगुकेम्
दम्मुल जोडु माकुनु सदा शरणं बनुचुं द्रिशुद्धिगा
नम्मितिनय्य यय्य! इक ना हृदयाब्जमुनीकु गट्टिगा
नम्मिति नय्य! वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ।। 30 ।।

व्याख्या

हे वेंकटनगाधिपती! एक संतोष भरी लीला समस्त दासों (भक्तों) को आनंद और सुख प्रदान करती है - वही आपके अरुण कमल पद युग्म की है। वही पद युगल हमारे लिए शरण्य हैं। उस पर मैं त्रिकरण शुद्धि से (मन, वाक्, कर्म - नामक त्रिकरणों से) विश्वास कर रहा हूँ। इतना ही नहीं, मैंने उपने हृदय कमल (हृदयाब्ज) को आपको ही बेच दिया है। यह बेचना भी वापस नहीं लेने की इच्छा से पूर्ण है। मैंने आपके पाद पद्मों पर अपने हृदय कमल को समर्पित कर दिया है। अब आप मेरी रक्षा नहीं करेंगे तो कैसे चलेगा?

विशेष

स्वामी को असमंजस की स्थिति में डालना और दास की रक्षा करने के लिए बाध्य करना भक्त का एक विशेष भक्ति रूप है। भक्ति कविता में इस प्रकार के अनेक उदाहरण मिलते हैं।

परिमेयि नेलिकोम्मु कवबायक ना वेनुवेंट रम्मु मा
तुंर नेगजिम्मु माकु वरदुंडवु गम्मु सुधर्मिवौट ने
नेरुगुदु लेम्मु कांक्षितमु लिम्मु भवद्गुणवर्णनल् व्यधा
हरणमु सुम्मु वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ।। 31 ।।

व्याख्या

हे श्रीहरी! पद्मावती वल्लभ! मुझे बिना छोड़े मेरे साथ रहते हुए मुझे एकनिष्ठता के भाव से अपनाइए। मेरे लिए आप वरद बनकर रहिए। मेरे शत्रुओं (मन के अंदर और बाह्य शत्रुओं) का नाश कीजिए। आप सुधर्मी हैं। यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ। इसीलिए मेरी प्रार्थना है कि आप मेरी सब कामनाओं (आकांक्षाओं) को पूरा करें। आपके गुण समूह का वर्णन करना ही मेरे दुःख जालों का हरण करने की क्षमता रखता है। यह मुझे मालूम है। फिर भी व्यथाओं के उपशमन के लिए ही यह सब कहा जा रहा है। मुझ पर दया कीजिए हे विलस्त्कृपामती!

विशेष

इसमें अंत्यानुप्रास अलंकार का प्रयोग है। यहाँ भगवान से प्रार्थना में एक सैनिक के रूप में अपने भक्त को स्वीकार करने की बात है। आरंभिक शब्द ''परि'' का एक अर्थ ''सेना'' है। इस अर्थ में ''परिमेचि'' 'एक सैनिक' बनता है।

नरुडु मुकुंद माधव जनार्दन कृष्ण हरे यटंचु मी
स्मरण दनर्चि मुक्ति गन जालुट देंतटि विंत मी कथल्
करमु विनंग रोसि चेवि गंटलु गट्टिन मुष्करुडु ग्र
च्चर गने मुक्ति - वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती!।। 32 ।।

व्याख्या

हे शेषशयन्! अर्जन (नर) ने आपको हे मुकुंद! हे माधव! हे कृष्ण! हे हरे! कह-कह कर स्मरण किया। उसने अपने आप को तर लिया। सिर्फ अर्जुन ही नहीं; हर मनुष्य (हर नर) इसी मार्ग पर चल कर मुक्ति प्राप्त कर सकता है। यह कोई अनोखी बात नहीं है। क्योंकि आपके नाम

माहात्म्य (सहस्त्र नाम) और आपकी गाथाएँ महत्वपूर्ण हैं। पूर्व, एक राक्षस (मुष्कर) ने आपकी गाथाओं और नाम उसके कानों में न पड़े, इस उद्देश्य से कानों के पास घंटे बाँध रखे थे - वही घंटाकर्ण नामक राक्षस था। वह भी आपकी कृपा से मुक्ति पा सका है। उसे सरलता से, मात्र नाम जपनेवाले को मुक्ति मिलना कोई अनोखी बात नहीं है, प्रभू!

विशेष

घंटाकर्ण एक राक्षस था। उसने अपने कानों के पास घंटियाँ बाँधी। वह भी क्यों? वह विष्णु द्वेषी था। साधारणतः राक्षस विष्णु द्वेषी होते हैं। घंटाकर्ण का लक्ष्य, श्रीहरि का नाम भूल से भी अपने कर्ण में नहीं पड़ने का था। कोई भी श्रीहरि का नाम स्मरण करें, लेकिन अपने कानों तक उसको पहुँचना नहीं था। अपनी ओर से घंटे बाँधकर उससे मुक्त रहना चाहा। पर निरंतर हृदय में श्रीहरि का स्मरण था, शत्रु भाव से ही सही। फलतः उसे मुक्ति मिली। यही वैर भक्ति है। वैर भक्ति को चाहनेवाले हरि क्या सहज प्रेम भक्ति को नहीं चाहेंगे?

कर मरुणंबुलै फलित काम्यमुलै निगमांत संतता
भरणमुलैन मी चरण पंकरुहंबुलु ना मनोऽबुजा
करमुन देजरिल्लुटकु गांक्ष योनर्चेद श्रीरमा मनो
हर! योनूर्पु! वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ।। 33 ।।

व्याख्या

हे श्रीरमामनोहर! आप लक्ष्मी देवी के मन को हरनेवाले हैं। इसीलिए आप रमा मनोहर हैं। आपके चरण कमल सुंदर अरुण रंग से शोभित हैं, सुकुमार हैं। भक्तों के काम्य हैं और उनकी कामनाओं को संपन्न करनेवाले हैं। आपके चरण निगमांतों (उपनिषदों) को आभरणवत बनाकर सुशोभित हैं। (उपनिषद हमेशा भगवान के श्रीचरणों के आभरण बनकर रहते हैं)। ऐसे दिव्य चरण मेरे मन रूपी सरोवर के पक्ष बनकर रहे हैं प्रभू। यही मेरी एकमात्र आकांक्षा है। (भक्त कवि हमेशा अपने हृदय में श्रीचरणों की आराधना करना चाहता है। इसलिए चाहता है कि वे चरण उनके मन में हमेशा रहें)। यही मेरी छोटी-सी इच्छा है। वेंकटनगाधिपती इसे पूरा कीजिएगा।

विशेष

पाद पद्म हैं! इसीलिए कवि ने अपने मन को सरोवर के रूप में माना है। निगमांतों (उपनिषदों) को कवि ने निरंतर आभरणों के रूप में परिकल्पित किया है। उपनिषदों को भगवान के चरण-कमल-अलंकार कहने में भव्यता है। यहाँ दोनों के बीच परस्पर भूष्य भूषण संबंध निरूपित है।

क्रम्मग रादु कूर्मि बरकांतल, नेंतटिकैन शत्रुल
न्नम्मग रादु, मच्चिक घनम्मर बेद्दल निच्चदच्चनल्
पम्मग रादु, बेग्गिलिन प्राणुल जिम्मग रादु, वेद में
दम्मग रादु - वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ।। 34 ।।

व्याख्या

प्रेम के नाम पर परकांताओं (अन्य स्त्रियों) की ओर आकर्षित नहीं होना चाहिए। काम संभालने के नाम पर शत्रुओं पर कभी विश्वास नहीं करना चाहिए। बड़ों के पास अगर हमें प्रेम से व्यवहार करने का अवसर मिल जाये तो उसे अपने लिए मिला अवसर मानकर अपने व्यवहार की सीमाओं का अतिक्रमण न कर सुव्यवहार करना चाहिए। अर्थात् बड़ों के सामने हास-परिहास, व्यंग्य, अपशब्द आदि के साथ काम-वासना भरा

व्यवहार नहीं करना चाहिए। ऐसा करने से हम पर हेय भाव उत्पन्न होकर बड़ों का मन हमसे उचट जाता है। हम पर उनका स्नेह घट जाता है। हो सकता है कि पूर्ण रूप से वह मिट ही जाय। इसीलिए हमें बड़ों के साथ ऐसा व्यवहार नहीं करना चाहिए। हमको अपनी सीमाओं में रहना चाहिए।

भय से कातर प्राणियों को (युद्धभूमि में) मारना नहीं चाहिए। शरणागत की रक्षा और पीठ दिखाकर भागनेवालों को मारना नहीं चाहिए। यह वीर का सहज स्वभाव होना चाहिए। वेद ज्ञान को किसी भी समय और किसी भी काल में बेचना नहीं चाहिए। शिष्य से धन इसके लिए लेना नहीं चाहिए। धन और संभावना (दक्षिणा आदि) को प्राप्त कर वेद ज्ञान बाँटना नहीं चाहिए। इसीलिए पुराने समय में वेदविदों को राजा लोग उनकी आजीविका के मार्ग को सुगम कर ज्ञान विस्तार में अपना सहारा दिया करते थे। आश्रमों में गुरु शिष्यों को खाना आदि देकर उन्हें विद्या ज्ञान संपन्न बनाते थे। (हे भगवान! ऐसी सद्‌बुद्धि सभी को दीजिए।)

विशेष

समाज के लिए आवश्यक नीतियों का बोध करना भक्त कवियों ने अपना एक लक्ष्य बनाया है। भक्ति शतकों में ऐसी नीतियाँ अनेक मिलती हैं। यह एक उदाहरण है। इस पंथ को अस्वीकार करनेवाले आलोचक भी मिलते हैं। परंतु नीति की अभिव्यक्ति भक्ति भाव के साथ मिलती जुलती है। यह एक परंपरा भी है।

हरि हरि यंचु नेंचु पुरुषाग्रणि दोषमु नंधकारमुन्
हरि हरियिंचु चंदमुन, नर्मिलि नात्म विरोधि वर्गमुन्

हरि हरिणालि द्रुंचु गति, नाश मेलर्प जेलंगु गाद श्री
हरि हरिमित्र! वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ।। 35 ।।

व्याख्या

कोई भी पुरुषाग्रणी (श्रेष्ठ पुरुष) भक्ति भाव से 'हरि' कहता हुआ नाम स्मरण करता है तो उसके जन्म-जन्मांतरों के पाप (दोष) को श्रीहरि हर लेते हैं। वह भी कैसे? जिस प्रकार सूर्य अंधकार को दूर करता है, जिस प्रकार हिरणों की भीड़ को सिंह नाश करता है उसी प्रकार भक्त के अंतः शत्रुओं को अर्थात् काम, क्रोध, मोह, मद आदि शत्रुओं का श्रीहरि (हरि = सिंह) नाश करते हैं।

इस छन्द में हरि शब्द के साथ ''हरि मित्र'' संबोधन सार्थक बन पाया है। हरि शब्द के अनेक अर्थ हैं - उनमें 'बंदर' भी एक अर्थ है। भगवान रामावतार में वानरों के मित्र रहे थे, प्रधानतः उन्होंने हनुमान और सुग्रीव व बाली का उद्धार किया था। इसीलिए श्रीहरि हरिमित्र हैं।

विशेष

इस छन्द में दो बातें रेखांकित करने योग्य हैं। एक 'हरि' नाम जप! हरिनाम जप करने वाला एक 'पुरुषाग्रणी' ही है। श्रीहरि और श्रीनिवास सब एक ही हैं। इस छन्द में हर चरण में तीन प्रथम अक्षरों में 'प्रास'(अक्षर मैत्री) है। यह एक विशेषता है।

सरसमु गानिगानमुनु शाक चयंबुलु लेनिबोनमुन्
स्थिर मति लेनिज्ञामुनु नित्य मनूनमुगानि मानमुन्
गुरुकृप लेनि ध्यानमु नकुंठित पात्रमुगानि दान मिं
परयगनेल? वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ।। 36 ।।

व्याख्या

इस छन्द में कवि ने लौकिक विषयों के आधार पर ध्यान की उपयुक्तता पर प्रकाश डाला है। कुछ लौकिक विषय ऐसे हैं जिनका आधार एक और तत्व पर निर्भर रहता है। लीजिए -

बिना रसता के क्या संगीत का कोई महत्व होता है? संगीत की उपयोगिता उसकी आनंद प्रदान करने की क्षमता पर आधारित होती है न! इसी प्रकार तीन चार शाकों (सब्जियों) के बिना खाना ठीक माना जा सकता है क्या? स्वाद भरे शाक भोजन रस (आनंद और तृप्ति) लाती हैं। मन का स्थिर होना (चंचलता रहित होना) ज्ञान के लिए आवश्यक बात होती है। ज्ञान का भण्डार जितना भी मनुष्य के पास हो, उसकी स्थिर मानसिकता के अभाव में वह व्यर्थ ही साबित होगा। 'मान' शब्द के अनेक अर्थ हैं गौरव, शील, नाम, क्रोध आदि अर्थ 'मान' के साथ चलते हैं। यहाँ गौरव अर्थ ठीक ठहरता है। कवि अर्ज करते हैं कि गौरव की दिन-ब-दिन वृद्धि निश्चित रूप से होनी चाहिए। गौरव की व्याप्ति के बिना उसका कोई महत्व नहीं रह जाता है। गौरव का धर्म है अनून होना; कम नहीं होना। इसी तरह ध्यान का महत्व मंत्र पर आधारित है। मंत्र गुरु की कृपा से प्राप्त होता है। गुरु कृपा रहित मंत्र निष्फल ही माना जाता है। दान प्राप्त करने के लिए पात्रता (प्राप्त करनेवाले में योग्यता) का होना आवश्यक है। अयोग्य को दिया गया दान निष्प्रयोजक ही होगा।

इन सबका कहने का लक्ष्य है कि गान, भोजन, ज्ञान, मान, ध्यान और दान सब अपना-अपना महत्व रखते हैं, पर उनके लिए भी आवश्यक लक्षण सहित होना जरुरी है। उनके अभाव में सब बेकार (व्यर्थ) सिद्ध होते हैं।

विशेष

ध्यान के लिए आवश्यक गुरुकृपा के महत्व को रेखांकित करते हुए, इन सबकी प्रार्थना, कवि वेंकटनगाधिपति के सामने प्रस्तुत करता है। कवि, वेंकटनगाधिपति से इन सब के निवेदन ध्यान के लिए आवश्यक गुरुकृपा के महत्व को रेखांकित करते हैं। लौकिक विषयों की चर्चा के द्वारा अपनी बात को कहना कवि संप्रदाय है। एक महत्वपूर्ण उक्ति है -

''विद्या ह्यापि सविद्या विना विनय संपदम्।''

विद्या विनय प्रदायिनी होनी चाहिए। वही महत्वपूर्ण सिद्धि होती है।

नेरमु पेक्कु वाक्यमुलु निन् गृपपुट्टग नाड, मेमु मी
वारमु, प्रोव नीदे कद भार, मिकन्युल वेड नेन्नडुं
गोरमु, सारे सारेकुनु गोरि तलंचेद मेंच नीदु नो
य्यारमु लोलि - वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ।। 37 ।।

व्याख्या

हे महानुभाव! आपकी कृपा को हम पर प्रसरित कराने योग्य वाक्यों (स्तुति वचनों) के द्वारा आपको रिझा नहीं सकते। हम में उतनी शक्ति नहीं है। फिर भी हम आपके ही हैं। अर्थात् हम आपके भक्त ही हैं। इसलिए आपको हमारा उद्धार करना ही है। यह आपका कर्तव्य है। क्या यह कर्तव्य निभाना आपके लिए भार है? कदापि नहीं न? दूसरों की प्रार्थना करना हम नहीं चाहते (अन्य देवताओं की शरण में हम जाना नहीं चाहते हैं, न कभी जायेंगे भी)।

हे प्रभु! आप हमारी ओर किंचित् ध्यान दीजिएगा तो आपको स्पष्ट विदित होगा कि हम आपके गुण-गान करनेवाले भक्त हैं। बार-बार

आपकी गाथाओं और अवतार विशेषताओं का ही स्मरण करते रहते हैं। यह अनन्य भाव से करते हैं। इस पर ध्यान देकर हे तिरुमलेश! आप हम पर दया दिखाकर तारिए।

विशेष

अनन्य भक्ति का भाव अगर भक्त में हो तो भक्त का उद्धार भगवान का कर्तव्य बन जाता है। इसी स्फुरण से भक्त को सेवारत होना होता है। कवि 'हम' (मेमु) सर्वनाम का प्रयोग कर सबकी ओर से विनती कर रहा है। उन्होंने अन्यत्र भगवान की प्रार्थना में ''मैं'' सर्वनाम का प्रयोग किया है।

दारुण रोग पुंजमुल दापमु नोंदेडि वेललंदु मी
पेरु दलंचुवारि कतिवेगमे तद्व्यथलेल्ल दूरमै
पारकयुन्ने? निन्गोलुचुवारिकि सौख्यमु लेल्ल प्रोद्दु बें
पारक युन्ने? वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ।। 38 ।।

व्याख्या

प्रस्तुत छन्द में दो ही वाक्य हैं। दोनों वाक्यों द्वारा लगभग एक ही अभिप्राय व्यक्त है। भक्त कवि भगवान श्रीहरि से कहते हैं कि हे प्रभु! यह पृथ्वी अनेकों रोगों का समूह है। उनसे समस्त प्राणी तप्त हैं, व्यथित हैं। उन रोगों में तो कुछ रोग असह्य होते हैं। दवा-दारू से ठीक नहीं होते। उनसे ग्रस्त होकर जन पीड़ित होते हैं। ऐसे रोगग्रस्त आपके भक्त होकर आपके दिव्य मंगल नाम का स्मरण करेंगे तो आप तुरंत उन्हें रोग मुक्त करते हैं। (दवा लेने के साथ-साथ भगवान नाम का स्मरण भी हो तो रोग अत्यंत शीघ्रता से दूर होते हैं, कवि यही कहना चाहते हैं)। सभी व्यथाएँ

भाग जाती हैं। (दूसरा वाक्य) हे प्रभू आपकी सेवा में रत भक्तों के लिए समस्त सुख समस्त समयों में सुलभ हैं। वे सुख समय के साथ बढ़ते ही रहते हैं। क्या यह सत्य नहीं है प्रभु! (अवश्य है)।

विशेष

इस छन्द के प्रश्न जैसे प्रश्नों में ही उत्तर छिपे रहते हैं, अंतर्निहित रहते हैं। जन व्यवहार में भी इस प्रकार के प्रश्न प्रचलित रहते हैं। यहाँ निश्चय गर्भ संदेहालंकार है। इसमें निश्चित भावना अंदर रहती है। ऐसे प्रश्नों के उत्तर देने की आवश्यकता नहीं रहती। इस तरीके के प्रश्नों से कही बात प्रभावशाली होकर सुननेवालों के हृदय में (भक्तों मे) बैठ जाती है, बात भी शक्तिशाली होती है।

एरिकि बुण्यपाप विधु लेंदु नोनर्पग बुद्धि भावमुल्
कारणमेन्न नेन्नटकिगावु भवत्करुणा कटाक्षमे
कारणमौनु गान ननुगाचिन गावकयुन्न भारमिं
कारय नीदे, वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ।। 39 ।।

व्याख्या

हे प्रभु! मैं सोच-समझकर देखता हूँ तो मुझे एक बात स्फुरित हो रही है। पुण्य कर्म अथवा पाप कर्म करने के पीछे लोग समझते हैं कि व्यक्ति की बुद्धि और सोच काम करते हैं। वास्तव में यह सच नहीं है। बुद्धि और सोच कारण बनते ही नहीं हैं। असली कारण आपके कटाक्षों में ही है (इसके अनेक उदाहरण पुराणों में प्राप्त होते हैं) इसलिए हे वेंकटनगाधिप! आप चाहे मेरी रक्षा करें या ना करें, समस्त भार आपका ही है और आप पर ही है। हे विलसत्कृपामती! कैसी कृपा करेंगे, कैसा कटाक्ष करेंगे, सब आप पर ही छोड़ रहा हूँ। बस!

विशेष

पुण्य कार्य करने की प्रेरणा भगवान के अधीन होती है, इसे ऐसा माना जा सकता है। क्या पाप करने के लिए भी भगवान प्रेरित करते हैं? कुछ सावधानी से सोचेंगे तो यह सही लगता है। वैर भक्ति में छिपा रहस्य यही है। सनक सनंदादि से शाप पाकर खिन्न जय-विजय से श्रीहरि ने कहा था - हे भक्त प्रवर! दुःखी मत होइए। आपके सामने मार्ग है। क्या तुम लोग मेरे भक्तों के रूप में जन्म लेकर पृथ्वी पर सात जन्म बिताकर अंत में मुझे प्राप्त करेंगे या तीन जन्म पर्यन्त मेरे शत्रु बने रहकर बाद में वैकुण्ठ आयेंगे? आप ही निश्चय कर लीजिए। इस पर जय विजय ने कहा था - ''आपके शत्रु बन तीन जन्म ही आपसे दूर रहना कष्टतर हो तो। प्रभु! हम सात जन्मों के लिए आपसे दूर कैसे रह पायेंगे?।'' परिणामतः जय विजय (वैकुण्ठ के द्वारपालक) हिरण्याक्ष-हिरण्यकश्यप, रावण-कुंभकर्ण, शिशुपाल-दंतवक्त्र बनकर तीन जन्मों तक दुष्ट बुद्धि और पाप कर्मी रहे। वैरी बने भक्त बनकर सदा हरि नाम लेते रहे। अंत में वैकुण्ठ पहुँचे। कहने का तात्पर्य है कि इस सबके कारक स्वयं श्रीमहाविष्णु ही हैं। वे ही कर्ता-धरता हैं। जो जब करना है उसे तभी करते हैं। अतः भक्त को सारा भार उन्हीं पर छोड़कर भक्ति मार्ग पर चलना ही सही मार्ग है।

सकल बुधानुरक्तिसरस प्रकटाखिलसद्गुणालि मौ
क्तिक घन शुक्ति वे विरज देंपुन दाटेडि शक्ति खंडिता
चकित समस्त दुर्विषय सक्ति भवत्पद पद्म भक्ति स
त्य कलित सूक्ति, वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती!॥40॥

व्याख्या

स्वामी पर हमारी भक्ति की अत्यंत शक्ति होती है। इस बात को यहाँ पाँच विशेषणों से जोड़कर कवि बता रहे हैं।

हे स्वामी! किसी पर आप में भक्ति और अनुरक्ति हो तो वह स्वच्छ सत्य से भासित होकर सरस सुंदर वाक्य सम प्रकाशित होती है। वेदांत की परिभाषा है - ''ब्रह्म सत्यम्।'' जगन्मिथ्या, यह एक महा सूक्ति है। यह सत्य सूक्ति भक्ति की बुनियाद भी है। भक्ति ही ब्रह्म साक्षात्कार का साधन है। पूर्व परिभाषा और इस उक्ति वाक्य, दोनों में अभेद है। सकल देवताओं और पंडितों की अनुरक्ति स्वरूपा ही विष्णुभक्ति है। प्रभु पर हमारे हृदय में उत्पन्न अनुरक्ति ही भक्ति है। साधारणतः कवि सद्‌गुणों की तुलना मोतियों से करते हैं। वे सरस रूप से प्रकट और अखिल (अनश्वर) रहते हैं। इस तरह की मोतियों के समूह का आधार सीप है। भक्ति सीप (सूक्ति) के समान है। कहने का तात्पर्य यह है कि सद्‌गुणों से ही भक्त गुणवान (प्रकाशवान) होता है।

विष्णुलोक (वैकुण्ठ) के चारों ओर विरजा नदी प्रवाहित रहती है। अयोग्य (जो भक्त नहीं है) व्यक्ति विरजा नदी को पार नहीं कर सकते। विष्णु भक्त ही उसे धैर्य एवं धृति से पार कर वैकुण्ठ पहुँच सकते हैं।

विशेष

इंद्रिय भोग दुर्विषय है। उनकी ओर सबकी आसक्ति रहती है। वह विष्णु भक्ति दुर्विषयासक्ति को खण्डित (नाश) करती है। विष्णु भक्ति की यह शक्ति आश्चर्य पैदा करने वाली नहीं है - विष्णु भक्ति बिना शरणम् नास्ति। भक्ति की शक्ति ऐसी होती है।

अनय मनोविकारमुन नल्कु चु गुय्यिडु नन्नु ब्रोचुक
न्नु बनियेमि नीकु, शरणागत रक्षये येंचि चूड नी
घन बिरुदांक, मब्बिरुदु कादननेटिकि ना निमित्त मो
यनघनिधान! वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ॥ 41 ॥

व्याख्या

'अघ' मानी 'पाप', न + अनघम् = नानघम्। मानी जो पाप नहीं है। अर्थात् पुण्य। (इस प्रकार की अभिव्यक्ति संस्कृत में सहज है। हे वेंकटनगाधिपती! मैं आपका भक्त हूँ। मैं तो अनेक मानसिक विकृतियों से ग्रस्त होकर डरा हुआ हूँ। आपसे रक्षा पाने के लिए विलाप कर रहा हूँ। आप तो मेरी अनदेखी कर रहे हैं। आकर क्यों मेरी रक्षा नहीं करते? मेरी रक्षा करने के अलावा आपको दूसरा काम क्या है? और क्या काम है? (भक्त की रक्षा करना, भगवान का प्रथम कर्तव्य मानना, भक्त का अधिकार बनता है।) कहिए? सावधानी से परखकर देखें तो और क्या हो सकता है? आपका विरुद ही शरणागत रक्षक है न! शरणागतों की रक्षा करना ही आपका कार्य है न? क्यों स्वामी! कितने ही कासुरों की रक्षा कर आपने विरुद सार्धक बनाया है! सिर्फ मेरे कारण आप अपना सार्थक विरुद्ध क्यों गँवाना चाहते हो? मेरी भी रक्षा कर दीजिए तथा अपना विरुद सार्थक कर लीजिए स्वामी! मेरी रक्षा करने से आपका विरुद अपने-आप रक्षित हो जायेगा! (इस प्रकार के व्यापार के लिए भगवान को प्रेरित कर कवि (भक्त) अपनी लौकिकता का प्रदर्शन कर रहे हैं। कवि कितने चालाक हैं।)

विशेष

कवि की भगवान के प्रति निश्चयात्मिका भक्ति का रूप इस छन्द में स्पष्ट है। भगवान से तीखे वचन करने की सहज प्रवृत्ति भक्तों (कवियों) की अपनी होती है।

मनसि नतार्चनादुल मिमुं गोलुवन् क्षणमात्रमैन ना
मनमुवशंबुगादु, चलमा? गनुमा बहुमान दृष्टि चे
घनमगु नी कटाक्षमुन गाक इकं दरियिंपनौने? वे
यनबनियेमि? वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ॥ 42 ॥

व्याख्या

हे श्रीशैलवास! हे श्रीनिवास! तैयार होकर आपकी सेवा में वंदना, अर्चना, अभिषेक आदि के द्वारा प्रस्तुत होने के लिए मेरा मन क्षण भर के लिए भी मेरे वश में नहीं हो रहा है भगवान! मैं क्या करूँ? अशक्त हूँ। अशक्त हो गया हूँ। 'यह मेरी सेवा नहीं कर रहा है। इसे क्यों तारना है?' - क्या इसी प्रकार की भावनाओं से आप ग्रस्त हैं? हे स्वामी! प्रेम और करुणा की दृष्टि से मुझे देखिए। आपका कटाक्ष अमूल्य अद्वितीय है। आपके कटाक्ष से ही कोई भी भवसागर को आसानी से पार कर सकता है। उसके बिना तरना क्या संभव है? हजार बातें क्यों प्रभु! मेरी एक ही प्रार्थना है कि अब आप कटाक्ष मुझ पर प्रसरित करो। (उसी के बल पर मैं तर जाऊँगा)।

घनतर भीति जिक्कि कड गानक क्रुम्मरु नन्नु गावगा
जनु विनु मीकु नायेडल संदिय मोंदग बाडिगादया
यनुपमपुण्य! नीदु चरणांबुजमुल शरणम्मु सुम्मु मा
कनवरतम्मु! वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ॥ 43 ॥

व्याख्या

हे अनुपम यात्मा! हे कलियुग प्रत्यक्ष देव! इस जगत में परिवार रूपी महारण्य में ऊहातीत भय के जाल में फँस कर बिना कोई किनारा (सहारा) पाये तड़प रहा हूँ। जहाँ हूँ वहीं चक्कर काट रहा हूँ। बाहर

निकलने का कोई रास्ता दिखाई नहीं दे रहा है प्रभू! ऐसी मेरी दीन स्थिति पर दया दिखाकर मुझे तारना ही आपका उपयुक्त कार्य है। यह आप ही कर सकते हैं। कृपा करके मुझे और मेरी भक्ति को शंका की दृष्टि से मत देखिएगा। मुझे संदेह से देखना आपका धर्म नहीं है। हे भगवान! हमेशा (अनवरत) मेरे लिए आपके पाद-पद्म ही शरण्य हैं। 'अन्यथा शरणम् नास्ति।'

विशेष

भगवान पर दोष लगाने के साथ-साथ प्रार्थना करना, भक्त का सहज स्वभाव होता है। इसी विधि में अधिक भक्ति झलकती है। प्रायः भक्त इसी रास्ते पर चलते हैं।

निन्नु शरणन्नवानि गरुणिंपगजालिन पुण्यशीलि वं
चनि भवदीय दिव्यचरणाब्जमे नम्मितिगृष्ण! नन्नु ब्रो
चिन नगुगाक नीवु दयनेलक युंडितिवेनि निंक ने
मनगलवाड? वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ।। 44 ।।

व्याख्या

हे श्रीकृष्ण! हे श्रीनिवास! कोई भी हो, यहाँ तक कि वह चाहे शत्रु ही क्यों न हो, आपकी सन्निधि में पहुँचकर शरण माँगेगा तो उसे दयापूर्वक तारते हो। ऐसे महान पुण्यशीली हैं आप। इसी भावना से मैं आपके दिव्य पाद पद्मों पर विश्वास रख रहा हूँ। इसलिए अब सब कुछ आप पर ही निर्भर है। आप तारेंगे या नहीं? (विश्वास है कि आप जरूर मेरी रक्षा करेंगे) अगर तुरंत आपकी दया मुझ पर नहीं होगी तो मेरे लिए करना ही क्या है? केवल समय और आपकी कृपा का इंतजार है! मैं आपको कुछ नहीं कहूँगा (आप पर दोषारोपण नहीं करूँगा)।

विशेष

भगवान करुणाकर हैं। एक बार उनकी शरण में जायेंगे तो पर्याप्त है। शरणागत की रक्षा उनका धर्म और कर्तव्य है। एक प्रार्थना मात्र से समस्त जीव कोटि को अभय दान देनेवाले दयालु हैं श्रीनिवास! रामायण में श्रीरामचंद्र ने इसे अपना शील और सिद्धान्त कहा है। रामायण के युद्ध काण्ड में आपकी प्रतिज्ञा है -

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतम्।। (युद्ध.18-32)

श्रीकृष्ण के गीता वचन भी इसी भावना को स्पष्ट करते हैं -

अनन्याश्चिंतयंतो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्यभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।। (9-22)

मनमुनु बुद्धि यिंद्रिय समाजमु नी वगुटन् धरित्रि नें
च नरुलु सेय रे पनुलु, सर्वमुनन् भवदाज्ञ सेल्लु, ने
सिनयतडुंडगा शरमु चेसेडिदे, मदुगान गर्त वी
वनि मदिनेंतु - वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती!।। 45 ।।

व्याख्या

सबके कर्ता-धर्ता भगवान ही हैं - यह एक सिद्धान्त है। इस पर कवि चमत्कारपूर्ण बाण छोड़ रहा है। हे वेंकटनगाधिपती! मन-बुद्धि, ज्ञानेन्द्रिय-कर्मेन्द्रिय समूह सब आप ही हैं न! सब आपके अधीन ही रहते हैं न! इस पर ध्यान से गौर करें तो लगता है कि इस धरती पर (संसार में) मानव अपने आप स्वयं क्या कुछ कर सकता है। हम अपने आप कोई काम नहीं करेंगे, न ही कर पायेंगे। मन से या बुद्धि से अगर कोई कार्य

करते हैं तो उनमें सर्वत्र आप ही हैं। सब कर्म आपकी आज्ञा (इच्छा) से ही संपन्न होते हैं न? अर्थात् हमारे पाप और पुण्यों में हम आपकी आज्ञा का ही अनुपालन कर रहे हैं? भगवदाज्ञा ही सर्वत्र चल रही है न भगवान! आप धनुर्धारी हो! मैं आपका बाण मात्र हूँ। बाण चलाने वाला तो ठीक ही है। बाण के लगने पर बाण को दोष देना कहाँ का न्याय है? बाण ने किस प्रकार की गलती की है? उसका अपराध क्या है? अतः मेरा विश्वास है कि सबके कर्ता आप ही हैं। मन से मैं यही मानता हूँ। हमारा उद्धार (रक्षा) करना आपका ही दायित्व है। हम तो शुद्ध सत्य रूप हैं। (इस में कवि की चमत्कार पटुता है।)

जननमु लिंक जालु, सुरसंघमुनन् नुतियिंपलेरु-नी
गोनमुल चालु, निन्नेपुडुगोल्चुट माकुनु वेयुवेलु, ने
ननुवुग निन्नेनम्मिति दयलु! भजिंचेद नीदु मेलु, न
न्निशमु नेलु - वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ।। 46 ।।

व्याख्या

हे वेंकटपती! आज तक मैंने इस पृथ्वी पर अनेक जन्म लिये हैं (पता नहीं कितने)। अब काफी है। आगे फिर मैं यहाँ जन्म लेना (जन्म लेकर कष्ट भोगना) पसंद नहीं करता। बस, अब आपसे मेरी एक ही विनती है, मुझे पुनर्जन्म रहित मोक्ष प्रदान कीजिए स्वामी! आपके गुणगाणों की सनती रखनेवाला अन्य कोई नहीं है प्रभु! आपको छोड़कर अन्य कोई आप सम स्तुति पात्र नहीं है। आपकी सेवा में रत रहना ही मेरे लिए सही है, हे दयगुणसंपन्न! मैंने सिर्फ आप पर ही विश्वास रखा है। आपकी महत्ता का स्मरण करता रहता हूँ। हमेशा आपके ध्यान में रत

रहता हूँ प्रभू। मैं चाहता हूँ कि आप भी हमेशा-हमेशा, दिन-रात मेरी रक्षा में रहिएगा स्वामी! (यही हम दोनों के बीच का संबन्ध रहे स्वामी)

विशेष

यह अंत्यानुप्रास से शोभित और गंभीर एकनिष्ठ विश्वास व्यक्त करनेवाला छन्द है। कुल मिलाकर इसमें छः वाक्य हैं। इसमें श्रीहरि के गुण ही नहीं बल्कि उनके धैर्य-शौर्य-प्रतापों का भी स्मरण किया गया है।

दीनुल पालिटं गलुगु देवुड बीवनि मी पदद्वयिन्
मानुग नम्मियुंडेडि यनन्यशरण्युनि नन् गटाक्ष दी
क्षानिरतिं गनुंगोनक सारे परा कोनरिंचु टेमो ना
कानति यिम्मु वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ।। 47 ।।

व्याख्या

हे शेष शैलवासी! हे श्रीनिवास! हम सब दीनों के भगवान हैं आप! यह मैं अच्छी तरह समझता हूँ। इसे जानकर ही मैंने आपके पद युग्मों के प्रति प्रेम पूर्वक (भक्ति युक्त) विश्वास रखा है। अकेले आप पर ही मेरा भरोसा है। अन्यों का शरण मुझे नहीं मिला है (मैं अन्यों के शरण में जाना भी नहीं चाहता हूँ)। अब मेरा और कोई अपना नहीं है प्रभू! ऐसे मुझ पर आपकी करुणा का प्रसार होना चाहिए। ऐसा न कर आप बार-बार क्यों अनमने हो रहे हैं नाथ! दयाकर मुझे समझाइए ताकि मैं अपने को और ठीक कर सकूँ। मेरी समझ में तो मैंने ऐसा कुछ नहीं किया है। मुझ में ऐसा एक भी दोष नहीं है प्रभु! भक्त कवि अपना उद्धार न होने का दोष भगवान पर ही डाल रहा है।

दीनुड नेनु ना दिगुलु दीरुपलेरोरु लीवु दीन र
क्षा निरतात्मकुंड वटुगावुन मामक दैन्य दुर्दशन्
मानुपुमय्य! निन्नु नेर नम्मिन दासुनि ब्रोवकुंट बा
गौनटय्य! वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ॥ 48 ॥

व्याख्या

हे प्रभू! मैं दीनों में अति दीन हूँ। मेरी व्यथा और कोई देवता दूर कर नहीं सकता। आप अकेले समर्थ हो। आपका मन (अंतरंग) दीनों की रक्षा में ही मग्न रहता है। आप दीन रक्षा निरतात्मा हैं। अतः दीनता से भरी मेरी दुर्दशा की ओर आप दृष्टि फेरिए! दयावान हो! इस व्यथा से मुझे मुक्त कीजिए। हे श्रीनिवास! हृदय से मैंने आप पर विश्वास किया है। मैं दीन से दीन हूँ। मेरा उद्धार किये बिना क्या आप सुखी रह सकते हैं? अगर कोई यह समाचार सुनेंगे तो क्या यह ठीक है कहेंगे? सही को आप जानते हैं। इसलिए तुरंत आप मुझे तारिए। जल्दी कीजिए प्रभू।

मानमु संततंबु, ननुमानमु लेल भवत्कथानु सं
धानमु नी पदार्चन विधानमु युष्मदमेय भक्ति वि
ज्ञानमु तावक प्रणुत गानमु त्वत्पदपद्म निश्चल
ध्यानमु देव! वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ॥ 49 ॥

व्याख्या

हे महानुभाव! हे देवाधिदेव! मुझ पर संदेह क्यों? मैं हमेशा आप की पुण्यकथाएँ गुनगुनाता रहता हूँ। अनवरत भागवत् कथा श्रवण और पठन करता हूँ (इसी को श्रीकृष्णदेवराय ने ''आमुक्त माल्यदा'' काव्य में दिव्य प्रबंधानुसंधानमु कहा है) सतत आपके दिव्य चरणों की अर्चना करता हूँ। आपकी भक्ति से आपूरित हृदयी हूँ। हमेशा आपके भक्ति-

विज्ञान का पता लगाता रहता हूँ। आप पर भक्ति तो किसी माप के साथ जुड़ती नहीं है। स्वामी भक्ति कैसी होनी चाहिए, आपके कौन-कौन भक्त हैं, उन लोगों ने किन-किन रास्तों को अपनाया है - इन सबकी जानकारी (ज्ञान प्राप्त करने) लेने का प्रयत्न करता रहता हूँ। आपकी महानता का वर्णन करना और आप पर भक्त प्रवरों से रचित कीर्तनों का गान करना मैंने अपना कर्तव्य माना है प्रभू! हे नाथ! इन पाँच मार्गी भक्ति पद्धतियों को मैं कभी छोड़ूँगा नहीं। अब आप निश्चिंत होकर मेरा उद्धार कर सकते हैं। (जल्दी कीजिए)।

विशेष

हेतुबद्ध रूप से कही गई बात प्रामाणिक मानी जाती है। इस छन्द में ''अनुमानमु'' (अंदाज) शब्द एक पारिभाषिक अर्थ संप्रेषित करता है। मानिए किसी पहाड़ पर से धुआँ निकल रहा है। उसे देखकर यह कहना कि पर्वत पर आग है हेतुबद्ध प्रमाण ही होगा। यही ''अनुमानमु'' शब्द धीरे-धीरे तेलुगु में आजकल ''संदेह'' के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा है। इसी अर्थ में यहाँ इस शब्द को ग्रहण करना चाहिए।

मानमदक्रिया हृदसमान विधानमु मोक्ष मार्ग सो
पानमु निर्गतोग्र भवबंध वितानमु सर्वमंगल
स्थानमु मंदिरांतर निधानमु तावक पादपंकज
ध्यानमु नेन्न! वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ॥ 50 ॥

व्याख्या

पहले छन्द में पाँच मार्गीय भक्ति मार्गों का कवि ने उल्लेख किया है। उनमें से अंतिम मार्ग ध्यान है। इस छन्द में ध्यान की पाँच और विशेषताओं का महिमासहित विवरण है। कवि कह रहे हैं - हे स्वामी!

अनुशीलन करने पर विदित होता है कि भक्ति में ध्यान का अपना विशिष्ट स्थान है। हे नाथ! आपके चरण-कमलों पर ध्यान लगाना सामान्य के वश में नहीं है। मनुष्य क्रोध से प्रभावित होकर जो बुरे काम करता है और मद से किये गये जो उसके कुकर्म हैं, उनसे विमुख करने की शक्ति ध्यान में है। साधना के मार्ग में ध्यान को अद्भुत क्षमता प्रदान करने की शक्ति है। मोक्ष प्राप्ति का अनुपम साधन ध्यान है। यह पहली प्रधान सीढ़ी भी है। जन्म लेना, मरना, अनेक जन्म लेना (जन्म परंपरा) और पारिवारिक (भौतिक) बंधन - ये सब एक समूह हैं (वितान है)। इस भयंकर भवबंधन वितान को तोड़कर (विनिर्गत कर) समस्त शुभ प्रदान करनेवाला एकमात्र साधन 'ध्यान' है। ध्यान आनंद निलय के मंदिर में छिपा एक निक्षेप (पूँजी) है।

विशेष

स्वामी की पाद-सेवा में ध्यानरत होनेवालों का प्रधान शत्रु 'क्रोध' और 'मद' है। उनका नाश केवल ध्यान से ही संभव है (भगवत ध्यान से)। जन्म राहित्य भी प्राप्त होता है। कवि कहते हैं कि मोक्ष की आकांक्षा रखनेवालों को 'ध्यान' के मार्ग पर चलना अवश्यंभावी है।

पुन्नम चंदुरुं देगडु पोंकपु नी नगुमोमु दम्मि ना
कन्नुल कर्वुदीर निट गंगोन जालिन भाग्यरेख मा
केन्नडु गल्गु नीवु कृपनेन्नडु माकु ब्रसन्नमय्येदो
यन्न! वचिंपु वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ।। 51 ।।

व्याख्याः

भक्ति शतकों के अधिकांश भाग में कवि का अपने इष्टदेव के साथ चलनेवाला वार्तालाप स्थान पाता है। यह वार्तालाप प्रेम और

सान्निध्य की भावनाओं से संपोषित रहता है तथा भगवान से समीपता का बोध करानेवाला रहता है। वह अनुराग प्लावित और सन्निकटता युक्त रहता है। प्राप्त और स्थान की विशेषताओं को लेकर रहता है - हे वेंकटनगाधिपती! आपका स्मित वदन (हँसमुख) हमेशा दरहास को बिखेरने वाला है। वह पूर्णिमा की आभा (प्रकाश) को पराजित करनेवाला होता है। उसका तिरस्कार करता है। वह अनुपम आनंद प्रदान करनेवाला है (हँसी की तुलना चाँदनी से, सुकुमारता की कल्पना पद्म (कमल) से एक साथ करना यहाँ विशेष रूप से द्रष्टव्य है)। ऐसे वदन का और प्रकाशमान आँखों की शोभा का दर्शन भाग्य अवश्य चाहिए। ऐसी अदृष्टरेखा या भाग्यरेखा हमारे ललाट पर लिखी हो। ऐसा भाग्य कब हमें प्राप्त होनेवाला है भगवान! दया कर आप हमें बताइए (अवसर प्रदान कीजिए)। कृपाकर कब आप यह सौभाग्य देंगे यह भी जतलाइए। कब ऐसा कटाक्ष हम पर प्रसरित होगा? (इसी का निरीक्षण है प्रभु!)

विशेष

रूप वर्णन में प्रतिभा, संबोधन पद्धति में पांडित्य और प्रार्थना में आर्ती, सारी विशेषताएँ भक्ति शतकों में पायी जाती हैं। इसकी एक झलक यहाँ मिल रही है।

क्रन्नन नादु मानस विकारमु मानिपि प्रोवुमंचु ने
न्नेन्नो विधंबुलन् वदलकेनु मिमुं बलुमारु वेडिनन्
विन्नप मालकिंचि करुणिंपवु नी मनसेंत गट्टि द
न्नन्न तलंप!? वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ।। 52 ।।

व्याख्या

हे देव! सोचते सोचते मुझे लगा है कि आपका मन कठोर है। यह मुझमें आश्चर्य जगा रहा है। मैं मानव मात्र हूँ। मुझमें काम, क्रोधादि

मानसिक विकारों का होना स्वाभाविक है। ऐसे विकार मुझमें अनगिनत भी हैं। इन सबको एक बारगी दूर कराके मेरी रक्षा कराने की कामना को लेकर आपसे मैं लगातार विनती करता आ रहा हूँ। मैं कभी इस मार्ग से विचलित नहीं हुआ हूँ। किन्तु इसका क्या प्रयोजन प्रभु! मेरी विनती की आपने परवाह नहीं की। मुझ पर करुणा नहीं दिखाई। यह क्या है भगवान! आपका हृदय कभी पिघलता है या नहीं? वह चट्टान है क्या? दया करके अब तो करुणा दिखाइए! यह मेरी अंतिम प्रार्थना है प्रभू!

मन्नन नेलुमन्न तरि मन्नन ब्रोव वदेमि मिन्न? य
न्नन्न! विचित्रमंचु नगरा यिदि लोकमु विन्न? नीवु क्रे -
गन्नुल जूडकुन्न ननु गाचेडुवार लिकेव्वरन्न मी -
कन्न मरेन्न? वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ।। 53 ।।

व्याख्या

हे श्रीहरि! यह कितनी आश्चर्य की बात है! मैं आदर और गौरव की भावना से प्रार्थना कर रहा हूँ कि हे स्वामी! मेरा उद्धार कीजिए। पर आप मेरी प्रार्थना को स्वीकार कर मुझे तारने के लिए नहीं आ रहे हो। इस दिशा में आपकी स्वीकृति की सूचना (संकेत) तक मुझे मिल नहीं रही है। यह क्या बड़प्पन है? (स्वामी के लिए प्रश्न है) अगर कोई सुनेगा तो क्या हँसेगा नहीं? सोचेंगे कि क्या अनोखा घट रहा है? अगर कनखियों से सही करुणा दृष्टि नहीं पसारेंगे तो अब मेरी रक्षा करनेवाला कौन होगा? आप ही बताइएगा। कितना भी सोचूँ, मुझे स्वीकार करनेवाला और उद्धार करनेवाला आपके सिवा और कोई नहीं है स्वामी!

विशेष

यहाँ कवि अपनी अनन्य भक्ति प्रकट कर रहा है। कह रहा है कि मेरा उद्धार नहीं करेंगे तो भगवान स्वयं उपहास के शिकार बनेंगे। एक प्रकार से भगवान पर ही ताना कसते हुए उन्हें सचेत कर रहा है, कवि अपने उद्धार के लिए।

आयत दीक्ष दोल्लि शरणागतुलं गरुणिंचि सद्दया
दाय धनंबुलिच्चिन विधंबुन नन्गरुणिंचि दोषमुल्
वायग जेसि शाश्वत शुभंबु लोसंगि यशंबु बोंदुट
न्यायमे नीकु! वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ।। 54 ।।

व्याख्या

हे परमात्मा! पूर्व युगों में, पूर्व समयों में, आपने बड़ी (आयत) दीक्षा लेकर अपनी शरण में आनेवाले सभी का उद्धार किया है। अपनी दया को अपनी ओर से ही उन पर बरसाया है। वह भी कैसे? जिस प्रकार लोग अपनी बपौती को पीढ़ी-दर-पीढ़ी प्राप्त कर रहे हैं उसी प्रकार भक्तों ने आपकी दया अनायास ही प्राप्त किया है। पित्रार्जित संपत्ति (बपौती) जितनी सरलता से संतान को प्राप्त होती है, उतनी सरलता से आपकी कृपा पहले भक्तों को मिली है। हे भगवान! आपका स्वार्जित दया और धर्म दोनों लोगों को मिलते हैं न! उसी प्रकार आपकी कृपा दृष्टि उनको मिली है। लेकिन जब मेरी बारी आयी तो ऐसा नहीं हो रहा है। मैं चाहता हूँ कि आप मुझ पर दया की वर्षा कराकर मेरे समस्त दोषों को दूर कर अपनी कीर्ति को दुगुना कीजिएगा (ऐसा करने पर कैसा रहेगा)। यह एक अद्भुत सिद्धि होगी। क्या ऐसा करना आपको अन्याय या अधर्म लग रहा है? नहीं है न! फिर देरी क्यों? हे तिरुमलेश! यह काम आप तुरंत कीजिए और यश पाइए।

विशेष

यहाँ कवि अपने उद्धार कार्य से भगवान को यश कमाने का लालच देकर अपनी ओर आकृष्ट कर रहा है। भक्त की उद्दंडता देखिए कितनी उन्नत है।

ना योनरिंचु दोषमु लनंतमु लैलनु मीपयिन् मन
स्तोयजमुन् घटिल्ले, बहुदुष्टुडजामिलुडोक्कवेल ना
रा! यनि पुत्रुबेर्कोनि तिरंबुग वाडट मुक्तुडौट ले
दा यने तोल्लि - वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती!॥ 55 ॥

व्याख्या

हे नारायण! जन्म जन्मांतरों से मैंने जो पाप किये हैं उनकी गिनती करना किसी के वश की बात नहीं है। इस जन्म में भी मैंने अनगिनत पाप किये हैं। फिर भी क्या हुआ है? अब तो मेरे हृदय कमल (मनस्तोयज) आपकी ओर ही मुड़ा है। आपकी पद सीमा में मचल रहा है। वहीं पर टिका है। ''इतने पाप साथ लेकर अब 'हरि-हरि' कहते तुम क्यों आगे बढ़ रहे हो?'' - यही आप कहना चाहते हैं क्या? 'तुम्हें अब मुक्ति कैसे मिलेंगी? कहना चाहते हैं क्या? तो सुनिए स्वामी! पहले एक दुष्ट को आपने कैसे तारा? जरा याद कीजिए अजामिल ने क्या किया था?

यौवनारंभ से ही उसने पाप करना आरंभ किया। बूढ़ा हुआ, तब भी नहीं बदला। मृत्यु का समय समीप आया। यम के दूत समीप आने लगे। तब वह घबरा गया। उसने अपने पुत्र के लिए जोर से चिल्लाया। वह तो कुछ दूरी पर था। पता नहीं क्या समझकर उसने अपने पुत्र का नाम नारायण रखा। उस नाम को भी वह पूरा बोल नहीं पाया। केवल ''नारा! नारा!'' कहकर पुकारा था। इसी से आप संतुष्ट हुए। उसकी

रक्षा के लिए (यमदूतों से रक्षा के लिए) आप स्वयं उसके सामने प्रत्यक्ष हो गये। यम दूतों को भगाकर अपने साथ अजामिल को वैकुण्ठ में ले गये। उतना भी पाने मुझमें की योग्यता नहीं है क्या प्रभू! ऐसा पापी ही मुक्त हुआ है तो मेरा मन कहता है मैं भी आपकी कृपा के योग्य हूँ। बस, अब आप की दया और कृपा ही मेरा भाग्य निर्धारित करेंगी। सब कुछ आप ही पर छोड़ रहा हूँ, प्रभू!

विशेष

इच्छाओं और अवसरों को खोनेवाला व्यक्ति कभी भी सन्मार्ग पर आ सकता है। अंतिम समय भी उसके लिए अनुपयुक्त नहीं है (पर ऐसा सोचकर अपना समय गंवाना मूर्खता है)। ऐसी गाथाएँ इसीलिए परिकल्पित हुई हैं। मानव को सही मार्ग पर आने के प्रयत्न का अवसर हमेशा खुला रहता है। कुछ ऐसे संदर्भ जीवन में उभरते हैं कि भगवान का स्मरण मानव ऐसे संदर्भों में अवश्य करता है। पश्चाताप से वह 'हरि-हरि' कहकर अवश्य पुकारेगा। यही कवि का विश्वास है।

ए येड दीनमानवु लनेक विधंबुल वेडु संदडिन्
ना योनरिंचु मोर्र चेवि नाटदो? गाक युपेक्षचेसेदो?
पायनि भक्तसंघ परिपालन भार वहंबुनं बरा
की येड गल्गेनेमो? मरि येटिकि ब्रोचुट किंत जागु! ना
रायणमूर्ति! वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ॥ 56 ॥

व्याख्या

हे जगन्नायक! मुझे तारने में आप बहुत देरी करते जा रहे हैं। मैं यहाँ इसके कारण के बारे में सोचने में लगा हूँ। मुझे लगता है कि आपके अन्य अनेक दीन जन आपसे तरह-तरह की विनतियाँ कर रहे हैं। उनकी

ध्वनि की होर आप तक पहुँच रही है न? उसके बीच मेरी प्रार्थना के स्वर आपके कानों तक शायद नहीं पहुँच पा रहे हैं। जाने दीजिए अब तो सुनिए। हे भगवान! क्या आप यह समझ रहे हैं कि मैं इसे छोड़ दूँ और आगे देखा जायेगा! स्वामी ऐसा मत कीजिए। भक्त समूहों की रक्षा का भार वहन करना आपके लिए अनिवार्य है। भार वहन में डूबे रहने के कारण क्या कुछ भूल-चूक हुई? अगर ऐसा नहीं हुआ है तो कहिए मेरी रक्षा में इतनी देरी क्यों हो रही है? हे नाथ! बिना कारण के इतनी असहज देरी मुझे अहेतुकी लग रही है (अतः तुरंत मेरी ओर बढ़िएगा)।

विशेष

साधारणतः वृत्त छन्दों में चार चरण होते हैं। भाव के विस्तार के संदर्भ में कभी-कभी पाँच चरणों के छन्द भी संपन्न होते हैं। इसे पंचपदीया पंचकरणी वृत्त कहते हैं। कुछ आलोचक इसे कवि की असफलता मानते हैं। फिर भी भक्ति शतकों में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं। इन्हें सहज माना जाता है।

तप्पवु सत्य मेन्नटिकि दास जनावलि दुःख वार्धिकिन्
देप्पवु मेलु चेसि मरि चेप्पवु मुंगिटिलो धनंबु पे
न्गुप्पवु तप्पुलेन्नक ममुं गरमोप्प गृतार्थु जेयु मा
यप्पवु नीव - वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ।। 57 ।।

व्याख्या

हे स्वामी! आप कभी सत्य से विचलित होनेवाले नहीं हैं। अपने पग से डिगनेवाले नहीं हैं। अभय प्रदान करने के बाद उसे टालते नहीं हैं। भक्त जन समूह द्वारा दुःख समुद्र पार करने के लिए आप नाव समान हैं। भक्तों की सहायता करने में आप आगे ही रहते हैं। दास की भलाई

तो करते हैं, पर कभी उसको प्रकट नहीं करते! ('दास' शब्द विष्णु भक्तों में साधारणतः नाम के साथ जुड़ा रहता है जैसे रामदास, तुलसीदास, सूरदास, आदि)। उसका प्रचार भी आपको अच्छा नहीं लगता। आप स्वयं प्रचार भी नहीं करेंगे। भक्तों के लिए आप आंगन की धनराशि हैं। आप पर विश्वास रखनेवाले भक्तों की संपत्ति हैं। सकल सुख-संपत्तियाँ उन्हें आप प्रदान करते हैं। (उदाहरण हैं सुदामा) मैंने क्या पाप किया? क्या-क्या गलतियाँ की हैं, उन सबकी गिनती नहीं करना ही आपकी स्वाभाविक प्रकृति है। आप उचित रीति से मुझे कृतार्थ बनाइएगा, प्रभु! हे परमात्मा (परमपिता) आप मेरे हैं।

विशेष

इस छन्द में प्रयुक्त ''अप्पडु'', ''अप्प'' शब्द स्वामी के नाम ही हैं। (तेलुगु में ये प्रचलित है जैसे - 'अय्यप्प')। ''आत्म'' शब्द का तद्भव रूप भी ''अप्प'' माना जाता है। इस रूप का प्रयोग प्राकृत में मिलता है। भगवान को भक्त अपना आत्मवासी मानता है।

एप्पुडो नी वोकप्पु डिल नेव्वरिनैन गटाक्ष दृष्टुलं
दप्पक चूचितेनि सुगुणंबुलु दामे क्रमक्रमंबुनं
जोप्पडु गर्मबंधमुल चोप्पडगिंचि कृतार्थु डौ निजं
बप्पुरुषुंडु वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ।। 58 ।।

व्याख्या

हे श्रीपती! इस भूमि पर कभी-न-कभी किसी-न-किसी को आप अपनी दया दृष्टि से अवश्य देखेंगे ही। इस प्रकार दया दृष्टि से देखेंगे तो अवश्य उसको सकल सद्गुण प्राप्त होंगे। उन सद्गुणों से उसे समस्त संपत्ति क्रमानुसार प्राप्त होती रहेंगी। निष्कर्ष है कि मानव को आपकी

कृपा दृष्टि प्राप्त होती है। इससे केवल सुख-संपत्ति मात्र ही नहीं मिलती बल्कि प्राप्त करनेवाला कृतार्थ संपन्न भी हो जायेगा।

''पात्रत्वात् धनमाप्नोति धनाद्धर्मस्ततस्सुखम्''

यहाँ आर्योक्ति है! सामान्यतया व्यक्ति धन से अपने कर्म बंधनों से मुक्ति प्राप्त करता है। यह कैसे होगा? इसका जवाब है कि गुण संपन्नता से वह तीर्थ यात्राएँ करेगा। यज्ञयागादि सत्कर्मों को संपन्न करेगा। इससे संचित पाप को दूर करेगा। इस प्रकार वह अपना जन्म चरितार्थ कर सकेगा। अभीष्टफल प्राप्त कर पायेगा। यह अटल सत्य है प्रभू। इन सबका आधार केवल आपकी कृपा ही है हे नाथ! यही मेरी प्रार्थना है, मुझे भी कृतार्थ बनाइए स्वामी।

चेसिन पापमेल्ल मरि चेप्पिन बायु न टंड्डु पापमुल्
चेसिन हानि यं चनक चेयगरानि महोग्रकृत्यमुल्
चेसिति गान नी केरुकचेसिति, ने गति नन्नु ब्रोचेदो
यासुरवैरि! वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ।। 59 ।।

व्याख्या

हे राक्षस वैरी! श्रीवेंकटेश्वर! व्याप्त विश्वास है कि किया हुआ पाप अगर कहा जाय तो दूर हो जायेगा। इसलिए मैं आपसे निवेदन कर रहा हूँ। हे प्रभू! मैंने पाप का फल कारक समझकर भी कितने ही पाप किये हैं। महा भयंकर पाप किये हैं। अब मैं उन सबका विवरण आपके सामने खोल रहा हूँ। मेरा आपसे निवेदन करने का अर्थ यही है कि वे सब गायब हो गये हैं। अतः अब आप किस प्रकार मेरा उद्धार करेंगे आप जानें। अपना कर्तव्य निभाइएगा, भगवान।

विशेष

इस छन्द में संस्कृत व्याकरण सम्मत शब्द रूप प्रयुक्त हैं। 'असुर' का अर्थ असुरों (राक्षसों) का समूह मानना है। असुरवैरि का अर्थ असुरों का शत्रु नहीं असुरों पर विजय पानेवाला समझाना ही ठीक होगा। पता नहीं कि 'किया हुआ पाप कहने से दूर होगा' की भावना ठीक है या नहीं। असल में किया हुआ पुण्य कहने पर दूर होगा - यही लोक का अभिमत है। इसे कवि ने अपने अनुकूल पाप के संदर्भ में स्वीकार किया है।

वासरमुल् वेसन् गडपुवाडु गदा रवि नाडु नाटि क
ब्जासन निर्णयायुवु व्रजं बगुनटूलुग, धर्म संग्रहं
बे सवरिंपनैति नन नेटिकि? माटिकि नीदु चिंतना
भ्यासमे चालु, वेङ्कट नगाधिपती! विलसत्कृपामती! ।। 60 ।।

व्याख्या

हे कलियुग प्रत्यक्ष देव! ब्रह्म (अब्जासन = कमल को आसन बनाने वाले) से मुझे आयु मिली है उसका दिन-ब-दिन कम होते रहने की सूचना देने के साथ-साथ सूर्य भगवान काल को चला रहे हैं। वह भी तेज गति से सूर्य के गमन के साथ दिन बदलते जाते हैं और जीवों की आयु घटती जाती है। यह काल चक्र की सहजता है। इससे एक ओर आयु घटती जाती है तो दूसरी ओर मैं पुण्य करके उससे प्राप्त होने वाली 'पुण्यनिधि' को संचित नहीं कर पा रहा हूँ। इस पर मैं चिंतित नहीं हो रहा हूँ भगवान! क्योंकि मैं अपनी दीन स्थिति का निवेदन आपके सामने करना नहीं चाहता हूँ (क्योंकि आप स्वयं जानते हैं)। केवल आप का नाम स्मरण और रूप चिंतन करता हूँ। यही मेरी आदत हो गयी है। क्या इतना काफी नहीं? (पुण्य समुपार्जन सम ही है न आपका नाम स्मरण और चिंतन)

मुझे अब कोई चिंता सता नहीं रही है। उम्र के घटने पर कोई व्यथा नहीं है। (बस, आप पर अटूट विश्वास रहे यही पर्याप्त है)।

विशेष

कवि का दृढ़ विश्वास कितना महान है।

''कलौ नाम जपान्मुक्ति'' - आर्योक्ति है।

इस युग में यज्ञ आदि क्रतुओं को करने की आवश्यकता नहीं है। केवल नाम का जप ही तारक है। समस्त धर्म संग्रह यही है - यही नाम स्मरण मुक्ति का साधन है।

इस छन्द में कवि का आत्मविश्वास अनुगुंजित है।

चूड गदय्य शीतलपु जूपुल नायेड नी परा किकन्
वीडगदय्य! पातकुडु वीनि भरिंपगले नटंचु बो
नाडकु मय्य! सर्वजननार्जित पातक पुंजमेल्ल ज
क्काड गदय्य! वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ।। 61 ।।

व्याख्या

हे सप्तगिरीश! आप अपनी करुणासिक्त दृष्टियों से मुझे देखिएगा। मुझे किसी भी हालत में, किसी भी स्थिति में छोड़िए मत प्रभू! आप मुझे पापात्मा की गिनती में मत रखिए। इसने अनेक पापकर्म किये हैं। इसका भार वहन करना मुश्किल है। मुझे आपकी परिधि से दूर मत कीजिए स्वामी! आज तक पता नहीं मैंने कितने जन्म पाये हैं, उनमें कितने पाप किये हैं। समस्त जन्मों में मेरे किये सभी पापों को दूर कीजिए हे नाथ! समूल उनका नाश कीजिए। मुझ पर कृपा दृष्टि डालिए।

विशेष

इस छन्द में प्रयुक्त शब्द आर्द्रर्ति से तप्त हैं। पाठक इस भावना को अपना बना कर अनुभव कर सकता है। इसमें प्रयुक्त देशी शब्द और देशी गंध अनुवाद के लिए कठिन हैं, हृदय स्पंदन भारतीय हैं। ये शब्द भक्त हृदय को सांत्वना प्रदान करनेवाले हैं।

पाडेद नीदु कीर्तनलु, पायनि भक्तिनि मिम्मु बल्मरुन्
वेडेद, दुष्टसख्यमुनु वीडेद, मी पदभक्तवर्गमुं
गूडेद, मीकुदुल्युलिकगुंभिनि लेरनि निश्चयंबुगा
नाडेदनय्य! वेङ्कट नगाधिपती! विलसत्कृपामती! ।। 62 ।।

व्याख्या

हे वेंकटेश्वर! मैं आप पर रचे हुए भक्ति गीत ही गाऊँगा। दुष्टों से (बुरे लोगों से) अपना नाता छोड़ दूँगा, आपके पादपद्मों में अनुरक्त भक्तों से ही अपना नाता जोड़ूँगा। उन्हीं से संबन्ध रखूँगा प्रभू! इस पृथ्वी पर हे दयामय! आपके समान अन्य कोई देव नहीं है। यह मेरा अटूट विश्वास है। इसका हृदय से प्रचार करूँगा। बस मेरी एक ही प्रार्थना है प्रभु। मुझ पर दया दिखाकर तारिए स्वामी।

विशेष

निश्चयात्मिकता भक्ति के लिए आधार है। इसी की अभिव्यक्ति इस छन्द में तप्त हृदय से की गयी है। भक्तवर रामदास ने भी भद्रादि राम पर इसी प्रकार की भक्ति रखी और प्रसार भी किया था। उन्होंने कहा कि मैं मस्त हाथी पर बैठकर ढिंढोरा पीटकर (डंका बजाकर) कहूँगा कि राम सम देव अन्य कोई देव नहीं है। अन्नमय्या का भी यही मार्ग रहा है।

सूरदास, तुलसीदास को भी इसी वर्ग में देख सकते हैं। यह औपचारिक भावना नहीं है, बल्कि मन में घर किया हुआ अविचल विश्वास है।

नी दरहास हास मुख निर्मल कांतिकि जूड साटिये
रेदोर? नीदु राजित शरीर घनदूयुतिका घना घनं
बे दोर लेदुरन्न! पुरुडे दोर नीकुजगंबुलन्? लस
त्सादरमोद! वेंकटनगाधिपती! विलरत्कृपामती! ॥ 63 ॥

व्याख्या

हे स्वामी! हे तिरुमलगिरीश! अनुशीलन करने पर मुझे तीन बातें स्पष्ट गोचर हो रही हैं। उनमें प्रथम हैं - मंदहास से विलसित आपका सुंदर वदन (चेहरा) और उससे विनर्गत (प्रसरित होने वाली) स्मिति (हास) से विकीर्ण (प्रसारित होनेवाला) प्रकाश क्या उस चंद्रमा की निर्मल स्निग्ध कांतियाँ सम हो सकती हैं? नहीं, नहीं, नहीं। फिर दूसरी बात लीजिए। समस्त शुभ सामुद्रिक लक्षणों से विलसित हो अद्भुत प्रकाश फैलानेवाली आपके शरीर की काँति (रंग) से सब सम्मोहित होते हैं। उस जैसा घनाघन द्युति (नील मेघ श्याम कांति) क्या किसी मेह (मेघा बादल) के पास होगा? नहीं नहीं नहीं। अब तीसरी बात! क्या इस समस्त ब्रह्मांड में (जगत में) आपके समान कोई देव हैं? आप अपने भक्तों पर अनुपम आदर और असमान कृपा दृष्टि रखते हैं न! आपके सम आप ही हैं प्रभू!

देवर! दीनपालनमदे वरकीर्ति यटंचुगूर्मिचे
ब्रोवर नादु नेरमुल प्रोवरगा शरणार्थिनैन न
न्गावर ना मनोरिपुल कावरमेल्ल नशिंपजेसि यिं
द्रावरजात! वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ॥ 64 ॥

व्याख्या

इस छन्द में एक विशेष संबोधन है 'इंद्रावरजात'। 'अवरजात' मानी बाद में जन्मा अर्थात् छोटा या अनुज भाई। श्रीहरि का वामन अवतार (पूर्ण मानव अवतार) इंद्र के बाद का होने के कारण श्रीहरि 'उपेंद्र' हैं। इसलिए यह संबोधन उचित है। हे इंद्रावरजात! दीनों की रक्षा करना ही आप अपना श्रेष्ठ यश मानते हैं, प्रेम से यह भार संभालते हैं। हे प्रभू! मुझे भी इसी भावना से स्वीकार कर उद्धार कीजिएगा। मुझसे बढ़कर दीन आपको और कौन ही मिलेगा? मेरे दोष इतने हैं कि उन्हें एक जगह इकट्ठा किया जाय तो बहुत बड़ा टीला बनेगा। इतना होने के बाद ही मैं आपकी शरण मांग रहा हूँ। जब तक मेरे दुष्कर्मों का नाश नहीं होगा तब तक भक्ति हृदय में ठीक संभालेगी नहीं प्रभू! मैं आपका शरणार्थी हूँ। कृपा करके मेरे अंतर शत्रुओं का (मुझ में डटकर निवास करनेवाले मेरे विरोधियों का) नाश कर मेरी रक्षा कीजिए, हे नाथ!

विशेष

बलि चक्रवर्ती को सद्बुद्धि प्रदान करने के लिए महाविष्णु ने वामन का अवतार लिया था। उस संदर्भ में विष्णु ने अदिति और कश्यप महाऋषि दंपति के पुत्र के रूप में जन्म लिया। बलि से तीन डग जमीन दान में लेकर तीनों लोकों को नापा था तथा बलि को पाताल में स्थान दिया था। समस्त देवता अदिति और कश्यप की संतान हैं। उनमें इंद्र भी हैं। इंद्र के बाद अदिति की संतान होने के कारण वामन इंद्र के छोटे भाई बने। फलतः वे उपेन्द्र कहलाये।

पावनमूर्तिवै पतितपावनदीक्ष वहिंचि - नायेडन्
नीवदि तप्पितेनियु गणिंगणि नव्वरे लोकु लीयेडन?

भूवर! नोच रादु कोरनोमुल टंड्रदि चूचि कावु दी
नावनशील! वेङ्कट नगाधिपती! विलसत्कृपामती! ।। 65 ।।

व्याख्या

हे पावन मूर्ति! आप पतित पावन रक्षादीक्षा मूर्ति हैं। हे प्रभू! आपकी एकमात्र दीक्षा दीनों और पतितों के उद्धार की है। इसे आपने प्रकट भी किया है। मेरे संबंध में उस दीक्षा को विस्मृत क्यों किया है? यह देखकर क्या लोग आप पर हँसेंगे नहीं? आप ही सोचिए। हे भूसतीवल्लभ! (भूवर) आधा व्रत कोई नहीं रखता है। व्रत को अधकचरा होने नहीं देना। तुरंत मेरी रक्षा कीजिए जिससे आपकी महत् व्रतदीक्षा (दीन जन रक्षा दीक्षा) भी पूरी हो जाए। अन्यथा आप अर्द्धव्रतधारी होंगे। इससे आपको अपयश ही मिलेगा, देख लीजिए (आप भूवल्लभ हो, इसलिए आपको भुवि पर प्रचलित सारी बातें मालूम ही होती होंगी)।

चीकटि नेव्वडेनि मिमु जिंतन जेसिन ढाकिनिमुखा
नेकपिशाचभूतगण मेल्लनु तद्दिश निल्वलेक ची
काकयि पारु गुंडेलु वकावकलै, भलि! डाक नीदे यौ
रा कोनियाड! वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ।। 66 ।।

व्याख्या

हे प्रभू! अकेले अंधेरे में बैठे रहने या चलते-फिरते समय साधारणतः मानवों में भूत-पिशाचों का डर लगा रहता है। (उस समय कुछ लोग हनुमान का स्मरण करते हैं तो कुछ श्रीहरि का। हनुमान और श्रीहरि दोनों राक्षसांतक हैं।) स्वामी! कोई भी ऐसे समय में आपका नाम स्मरण करेगा तो उसके आस-पास मँडरानेवाले भूत आदि उनके पास न ठहरकर भाग जाते हैं। कितना आश्चर्य है, भला! इतना ही नहीं और

भयंकर शाकिनी, ढाकिनी, पिशाच बृन्द भी दौड़ लगाकर भाग जाते हैं। हम लोगों का सरल काम है - केवल आपकी सतुति और प्रार्थना करना। भूतों को भगाने का कष्टप्रद कार्य आप निभाते हैं प्रभू।

विशेष

इस छन्द के द्वारा कवि यह कहना चाहते हैं कि इस भुवि पर जीवों के हर भय के लिए हरि भक्ति एक संरक्षण कवच है। नाम स्मरण वज्र कवच है।

ना कभय प्र सिद्धिकि मनंबुन नेन्नेद जाप सायका
नीकमु दाल्चि युद्धमुन निल्चिन निन्गनि राक्षसालि नी
ढाककु दालजालक हुटाहुटितो देग बारुटेल्ल लो
कैक शरण्य! वेङ्कट नगाधिपती! विलसत्कृपामती! ।। 67 ।।

व्याख्या

शरण्य का अर्थ है 'जाकर शरण माँगने योग्य व्यक्ति।' भगवान ही एकमात्र लोक शरण्य है। सब जीव (मनुष्य सहित) उनकी शरण में जाकर सुरक्षित हो जाते हैं। इस छन्द में भक्त कवि श्रीवेंकटेश्वर को 'लौकिक शरण्य' कहकर पुकार रहे हैं। हे लौकिक शरण्य! हे श्रीनिवास! आप युद्ध क्षेत्र में खड़े होते हैं तो कौन आपके सामने ठहर सकता है? आपके सामने ठहरने की हिम्मत किसमें रहती है? हे प्रभू! आप-अपनी धनुष (शारङ्ग) को लेकर बाण समुदाय को (सायकनीक) राक्षसों पर प्रचंड रूप से बरसाते हैं तो आपके प्रताप और बाणों की तीव्रता का सामना करने में असफल हो तितर-बितर हो जाते हैं। इस प्रकार के युद्ध अनेक चले हैं। हमेशा राक्षस ही भाग निकले हैं। इस सबको मैं हमेशा गाता रहता हूँ, क्यों? आप सर्वकालों और सर्व अवस्थाओं में जीवन

समर में मेरे साथ रहें। इस प्रकार का अभय मुझे मिले (हे प्रभू! हमेशा आप मेरी रक्षा में तत्पर रहिएगा)।

विशेष

जीवन-यात्रा को एक युद्ध के समान समझना और इस यात्रा को जीवन-समर कहना यहाँ सटीक है। जीवन में बाह्य और अंतर युद्ध चलते ही रहते हैं। इससे बचानेवाले एकमात्र भगवान हैं। श्रीनिवास! इसीलिए वे दीन जनबंधु हैं।

बडि बडि जित्तमुन्निलुवबट्टग लेनु, महोग्रकृत्यमे
नुडिविनवाडगानु, मरि युष्मदधीनमु नादु मनु, ने
प्पुडुनिक नन्युलं दलपबोनु, परंपर येंचिचूड नी
कोडुकनु नेनु, नादु मदिगोर्कु लोसंगग मेलु सेय नि
न्नडुगिडनीनु! वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ।। 68 ।।

व्याख्या

यह एक और पंच-चरण वृत्त छन्द है। कवि इसमें अपनी अनर्हताओं (अयोग्यताओं) को गिनाकर (स्पष्ट रूप से प्रकट कर) भगवान से रक्षा की प्रार्थना कर रहे हैं। हे स्वामी! मेरा मन अत्यंत चंचल है। उसे मैं अपने अधीन में रख नहीं पा रहा हूँ। वह चारों दिशाओं में दौड़ता रहता है। मैं अपने मन को चंचल हो मचलने पर उसे स्थिर नहीं कर पा रहा हूँ प्रभू! यह एक अशक्तता है। मैं जान-बूझकर पाप कृत्य करने से दूर भाग भी नहीं सका हूँ (महोग्रकृत्य = महान उग्र कृत्य - महापाप)। पर एक बात ही यहाँ बची हुई है। अभी तक मेरा शरीर मेरे अधीन है। अब उसे आपके अधीन कर रहा हूँ (बूढ़ा होने पर यह भी संभव नहीं होगा)। अब पूरा कर्तव्य आप ही का है। मैं कभी किसी अन्य का शरण नहीं चाहूँगा

(अन्य देवताओं की शरण में नहीं जाऊँगा)। अब मुझे अनन्य भक्ति पर विश्वास बढ़ा है।

हे स्वामी! इन सबको छोड़िए। अब हम दोनों के बीच एक ही बंधुत्व (नाता) बचा है। उस पर ध्यान और अनुशीलन करना है। उसकी ओर बढ़ेंगे तो मिलेगा कि परंपरा के अनुसार आप 'पिता' हैं (परमपिता) और मैं 'पुत्र' हूँ। बस अब मैं अपने मन की कामनाएँ जैसे मुक्ति प्रदान करना आदि को संपन्न कराने के बाद ही आपको छोड़ूँगा। तब तक आपको हिलने-डुलने नहीं दूँगा, बस!

विशेष

श्रीनिवास भारद्वाज गोत्र के हैं कुछ लोग उन्हें श्रीवत्स गोत्र के मानते हैं। मंचेल्ल कृष्ण कवि का गोत्र भी वही है। इसीलिए भक्त कवि (गोत्र एक होने के कारण) अपने को उनका पुत्र मान रहे हैं और इसी नाते अपने उद्धार की पेशकश कर रहे हैं। यह एक विशेष है।

बिडियमिकेल ने बरुलवेड गृताकृत देषमेंचि न
न्निडुमल बेट्ट जूचुटकु नेंतटिवाड गटाक्ष द्दष्टि ना
येड निगिडिंचि नन्नु दयनेलुटे मिक्किलि कीर्ति चूड मी
नडक महत्वमेल्ल विनिनाड निकं गललोननैन मी
यडुगुलु वीड - वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ।। 69 ।।

व्याख्या

हे वैकुण्ठवासी! मेरे सामने कोई दुविधा नहीं है। न कोई हिचकिचाहट है। मन की बात आपसे कह रहा हूँ। मैं आपके अलावा और किसी के सामने सर नहीं झुकाऊँगा, स्वामी। मेरे किसी कृताकृत (किया या अनकिया) अपराध पर द्दष्टि मत रखिए। किसी एक दोष को ध्यान में

रखकर मुझे मुसीबतों में मत डालिए। अगर आप कष्ट ही देना चाहें तो मैं किस हस्ती का आदमी हूँ। (मैं अकिंचन कुछ नहीं कर पाऊँगा।) आप मुझ पर कृपाकर एक कनखी से सही, कटाक्ष वीक्षण प्रसारित करेंगे तो मैं इस संसार सागर को पार कर पाऊँगा। मेरी ओर दया दृष्टि से निहारना ही आपके लिए भी अत्यंत श्रेयस्कर है। मैं आपकी अपार शक्ति और आपका माहात्म्य अच्छी तरह जाननेवाला ही हूँ। आप पर विश्वास रखनेवाला भक्त हूँ। मेरा विश्वास है कि आप अवश्य अपने भक्त को तारेंगे। हे गोविंद! सपने में भी मैं आपके चरणों को नहीं छोड़ूँगा। बिना किसी शर्म के मैं यह निवेदन कर रहा हूँ प्रभू!

उडुगनि मुक्ति त्रोव, जमु नुल्लसमाडग जालु चेव, तुं
दुडुकुल गेल्चु टेव, बहु दुर्भर जन्म परंपरा महा
जडधिकि नाव, भूमि जनसंतति कारय देवदेव! मी
यडुगुल सेव - वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ॥ 70 ॥

व्याख्या

हे देवदेव! अनुशीलन कर देखने पर विदित होता है कि इस धरती पर रहनेवाले मानव समूह के लिए आपकी पदसेवा कभी बंद न होनेवाला मुक्ति मार्ग है। अनेक पीढ़ियों तक यह मार्ग खुला ही रहता है। कभी खत्म होनेवाला नहीं है। यमराज का भी उपहास करने की शक्ति आपकी पदसेवा भक्ति में निहित है। सब पर विजय पाने की शक्ति से विलसितों को भी पराजित करने का धैर्य आपकी सेवा द्वारा प्राप्त होता है। जन्म परंपरा, मुमुक्षुओं के लिए (मोक्ष चाहनेवालों के लिए) दुर्भर होती है, असहनीय होती है। इस संसार पारावार के लिए (महासमुद्र के लिए) आपकी पदसेवा ही नाव है। इस दुःख जलनिधि को आसानी से पार करवाने की शक्ति केवल पाद सेवा (भक्ति) को ही है नाथ! उसके

संबल से बिना पैर को पानी लगे (किसी प्रकार के कष्ट का अनुभव किये बिना) पार कर सकते हैं। यह सब जान कर ही मैं आपकी पाद सेवा में मग्न हुआ हूँ। अपनाइए और अपने नाम को सार्थक बनाइए प्रभू!

ई क्षिति नी वदान्यगुण मेंतनि चेप्पग वच्चुनो सरो
जेक्षण! कावुकावुमनि येंतयु भीति गलंगि वेडगा
नक्षय वस्त्रसंचयमु ला क्षण मीयवे द्रौपदी पयो
जाक्षिकि मुन्नु! वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ॥ 71 ॥

व्याख्या

हे कमललोचन (पद्म सम नेत्रवाले)! इस पृथ्वी पर आपकी दातृता की महत्ता कहने की क्षमता किसमें है? इसका वर्णन करना क्या सामान्य के वश में है? (असंभव) हे भगवान! कितना भी वर्णन करो तब भी आपके दान गुण की महत्ता का अंश कुछ बचा ही रह जाता है, ऐसे दान गुण संपन्न हैं आप! एक ही उदाहरण काफी है - द्रौपदी के मान संरक्षण का प्रसंग! भरी सभा में उन्हें खींच कर लाया गया। दुरितों ने सभा के बीच उनके वस्त्रों का हरण करना चाहा था। द्रौपदी भयभीत हो गयी थी। बहुत विचलित होकर आपका स्मरण किया। ''हे कृष्ण'' कहकर दीनार्द्र उन्होंने आपको पुकारा। वह आर्त की रक्षा के लिए दीन होकर हृदयांतराल से उभरी पुकार थी। पुकार सुनते ही आपने द्रौपदी को अक्षय वस्त्र दान दिया। दुष्ट (दुःशासन) चीर हरण करते-करते मूर्छित हो गया, लेकिन द्रौपदी वस्त्रहीना नहीं हुई। ऐसे उत्कृष्ट वदान्य गुण के बारे में कहना कठिन है। आपके गुणों का वर्णन करना क्या सामान्य के लिए संभव है? कितना कह पायेंगा स्वामी! (इस आर्त की भी रक्षा कीजिए)।

पक्षि तुरंग! नी मन मपार कृपारस राशि, निर्मलम्
बक्षयमैन नीदु यश, मारय गार्यमु नीकु भक्त सं
रक्षणता दृढ़त्वमु - पराकुन नुंडगबोकु, नाकु ब्र
त्यक्षमु गम्मु - वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ।। 72 ।।

व्याख्या

हे पक्षिवाहन! आपका मन अपार दया सागर है। आपकी कीर्ति अति निर्मल है, अक्षय है, अनंत है। कभी कम न होनेवाली है। आपके यश का अवलोकन करने पर मुझे एक बात स्पष्ट दिखाई दे रही है। आप अनवरत भक्तजन संरक्षक हैं। लगता है कि आपने दृढ़ता से भक्त रक्षण कार्य को अपनाया है। उसे अपना एकमात्र कर्तव्य माना है। मेरी चाह है कि आप इस विषय में ऐसे ही रहें। कभी अन्यमनस्क मत होइए। आप तुरंत प्रत्यक्ष होकर मुझे आपका दर्शन भाग्य प्रदान कीजिए। हे तिरुमलेश! हे श्रीनिवास!

[कवि (भक्त) का मन चाहता है कि कभी भगवान के निर्मल यश को किसी प्रकार का कलंक न लगे]

एंत दुरात्मुडैन नघमेंत योनर्चिन मानवुंडु प्रा
णांतमु नंदु नी भजन मब्बिन मोक्षपंदबु जेरु श्री
कांत! भवत्कटाक्षमुनगाक घटिंचुने यट्टि पुण्य म
त्यंत विभूति? वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ।। 73 ।।

व्याख्या

हे श्रीकांत! हे लक्ष्मीपति! कोई कितना भी दुर्मार्गी क्यों न हो, कितना ही पापकर्मी क्यों न हो, कम-से-कम अपनी मृत्यु के समय ही सही (प्राणांतकाल में सही) आपका स्मरण करता है तो अवश्य मोक्ष

प्राप्त करता है (मोक्ष पद प्राप्ति सुलभ होती है)। जन्म परंपरा से उसे मुक्ति मिलती है। उस स्तर का पुण्य और विभूति (=ऐश्वर्य) केवल आपके कटाक्ष मात्र से ही संभव है, प्रभू! अन्यथा नहीं। हे स्वामी आपकी कृपा से आपके कटाक्ष वीक्षण से ही जीवन के अंतिम समय में ही सही, आपका स्मरण मनुष्य कर सकेगा और मुक्ति पायेगा।

चिंतिलनेल कोंत, मिमु जेरि भजिंचिनवारि केन्न डा
वंतयु लेदु वंत, ननु सादरदृष्टिनि बार जूडु मो
क्किंत, मदीयभीति हरियिंपग जागिक जेसितेनि ले
दंतटि विंत - वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ।। 74 ।।

व्याख्या

हे पुष्करिणीनाथ! किसी भी मनुष्य के लिए कुछ भी चिंता करने की आवश्यकता नहीं है। चिंता करने का क्या ही कारण रह जाता है? आपकी शरण में आकर मन में ही स्मरण करने मात्र से अथवा आपकी सन्निधि में पहुँचकर (मंदिर में आकर) आपके दर्शन मात्र से क्या किसी भक्त में चिंता छिपी रह सकती है (चिंता दूर भाग जाती है - आप अवश्य उसे दूर कर देते हैं)। रत्ती भर चिंता भी अवशेष के रूप में नहीं रहेगी। इसे समझकर और जानकर मैं आपकी सेवा में सेवारत हूँ। अतः आदर से युक्त दृष्टि मेरे ऊपर प्रसारित कीजिए प्रभू! थोड़ी कृपा मात्र मेरे लिए पर्याप्त है। बस, वह मेरे मन में व्याप्त नरक का भय और पुनर्जन्म का भय दूर कर देगा। आप पर ही मेरा भरोसा है स्वामी! अगर इसमें देरी हो या आप देरी करेंगे तो इससे बड़ा आश्चर्य इस दुनिया में कोई दूसरा नहीं होगा। अब तक आपने बहुत देरी की है। अब इसके लिए कोई स्थान नहीं है प्रभू! मुझ पर कृपा कीजिएगा!

विशेष

यह छन्द अंत्यानुप्रास अलंकार से अत्यंत रमणीय बना है। भक्ति शतकों में इस प्रकार की रचना अभिव्यक्ति को शोभा प्रदान करती है। उक्ति चमत्कार भक्ति भावना का संपोषक ही है।

कांतु मनीष निन्नु सिरिकांतु, निजंबुग नी कटाक्ष मा
सिंतु, भवत्कथान्यमु हसिंतु, ननुन्मतिमंतु जेय नी
वंतु, निरंतरंबु गुणवंतुलु मेच्चग नी गुणव्रजं
बंतयु नेंतु - वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ।। 75 ।।

व्याख्या

हे श्रीपती! आप लक्ष्मीनाथ हैं। सिरिकांत (श्रीकांत) हैं। मैं हमेशा एक ही कामना लेकर आपका दर्शन करता रहता हूँ। आपके कटाक्ष पाने के लिए मैं हमेशा लालायित रहता हूँ। आपकी दिव्य गाथाओं के अलावा और किसी की कथा को परिहसित करता हूँ। उसे कभी मैं मूल्यवान नहीं मानता हूँ। इस प्रकार मुझे बुद्धिमान बनाना आपका ही काम है। आपकी ओर आकृष्ट कर आपकी सेवा में मेरे मन को और तीव्र गति से आकर्षित करने का कर्तव्य आप ही का है प्रभू। सदाचारी और सद्गुणी भक्तों और बड़ों के द्वारा सराहना पाने की रीति में चलकर मैं आपका निरंतर स्मरण करूँगा। ऐसे मुझे आप क्यों न तारेंगे (अवश्य तारेंगे)? बस, आपका कटाक्ष मात्र चाहिए।

विशेष

मनस् + ईषा = मनीषा (मनीष) है। अर्थात् मन की कामना। संदर्भ मन की कामना। संदर्भ के अनुसार यहाँ बुद्धि और मन के अर्थ भी स्फुरित होते हैं। इसी अर्थ में मनीष = मनुष्य है।

दंति महार्ति बापिन युदार दयापर मूर्ति वौट ना
वंतलु वापि प्रोचुटकु भारमु नीदे यटंचु नम्मि नि
श्चिंततनुन्न नन्नु दय चिप्पिलु चूडूकुल जूड नोप्पु न
भ्यंतर मेल? वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ।। 76 ।।

व्याख्या

हे श्रीनाथ! आप दयामूर्ति हैं। दूसरे शब्दों में कहूँ तो आप दया के एक और रूप ही हैं। पहले आपने गजराज पर आयी विपत्ति को दूर किया था। सुदर्शन चक्र का प्रयोग कर मगर के सिर को काटकर हाथी की रक्षा की थी। गजराज ने दुःख भरे स्वर में पुकारा था और आप तुरंत दौड़कर आये। आप ऐसे उदार दया मूर्ति हैं। आपको मेरे कष्टों को दूर करना सरल ही है। मेरी रक्षा का भार आप पर ही है भगवान। मैं वैसे ऊपरी बातें नहीं कर रहा हूँ प्रभू! मन में विश्वास रखकर प्रार्थना कर रहा हूँ। आप पर भार डालकर मैं निश्चिंत हूँ। मेरी यह आशा ही नहीं, विश्वास है कि सब कुछ आप ही संभाल लेंगे। मुझे आप ऐसा कैसे देखेंगे प्रभू। दया छलकानेवाले नेत्रों से ही देखना। यही ठीक होगा स्वामी! इसमें रुकावट क्या? किसी को आपत्ति ही नहीं होनी चाहिए।

विशेष

दंति का अर्थ हाथी है। लंबे दाँत हाथी के ही होते हैं। दाँतवाले किसी को भी दंति कहा जा सकता है। लेकिन दंति शब्द 'हाथी' के लिए ही रूढ़ हुई। कहते हैं कि ऐरावत (इंद्र का हाथी) के चार दाँत होते हैं।

वेमरु वेड सागेननि वेसट नोंदितो, यट्लुगाक ई
पामरु ब्रोव नेय्यदि युपाय मटंचुनु जिंत जेदितो
ये योर वेट्टिनं दलप वेक्कडि राजसमय्य नीकु! भ
क्तामर शाखि! वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती!।। 77 ।।

व्याख्या

हे भक्तामरशाखी! (भक्तों के लिए अमर शाखी = कल्पवृक्ष) भक्तों के कल्पवृक्ष! आप मेरे बारे में क्या सोच रहे हैं? यही न कि 'यह क्यों बार-बार मुझे स्मरण कर रहा है। मुझे छोड़ नहीं रहा है। मुझे परेशान कर रहा है' - यही आपका विचार है न? अन्यथा आप समझ रहे हैं कि 'यह अज्ञानी है, केवल पामर है, इसे तारने का उपाय क्या हो?' हे स्वामी! इतनी अनवत चाह के बावजूद आप मेरी प्रार्थना क्यों नहीं सुन रहे हैं? मुझे याद क्यों नहीं कर रहे हैं? मुझे दर्शन क्यों नहीं दे रहे हैं? मेरा उद्धार क्यों नहीं कर रहे हैं प्रभू! आप सत्व गुण के आगार हैं! आप में ऐसी राजस वृत्ति कैसे घुस पायी है? (रजो गुण सत्वगुण को ढक देता है) प्रभु आप पर ही सब कुछ निर्भर है, क्या कीजिएगा।

साममु मीर मिम्मेपुडु साममुचे गोनियाडुवाडु हृ
द्धाममुनंदु नी महितधाममु निच्वलु निहिपुवाडु मी
नाममु संस्मिंचुचु ब्रमाणमु निच्व योनर्चुवाडु नि
त्यामल कीर्ति - वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती!।। 78 ।।

व्याख्या

हे नित्यामलकीर्ति! [नित्य = हमेशा; अमल = निष्कलंक, स्वच्छ; कीर्ति = यश (वाले)] सौम्य भाव से आपका भजन करता हूँ। नित्य साम गान से आपका यश गाया करता हूँ। हृदय मंदिर में आपके तेजो स्वरूप को प्रतिष्ठित किया हूँ। उसी प्रकार आपका नाम स्मरण सदा करता हूँ। क्योंकि सर्वकाल सर्वावस्थाओं में आपका यश गानेवाला, आपकी जो मूर्ति हृदय में रखनेवाला और आपका नाम (सहस्रनामों में किसी एक नाम को लेकर) जप करनेवाला - ये तीन ही नित्यामल कीर्ति हैं। इसे मैं जानता हूँ। इसी पर मेरा विश्वास है प्रभू।

विशेष

यह कवि सामवेद का पंडित है या नहीं इसका पता नहीं है। पर अन्य दोनों प्रकार से ये विमल मूर्ति ही हैं। संगीत का जन्म सामवेद से माना जाता है। संगीत को जाननेवाला संगीतज्ञ हैं तो भक्ति पद (छन्द) लिखकर गानेवाला कवि वाग्गेयकार है। भगवान का यशोगान भक्ति का आधार है। मंचेल्ल कृष्ण कवि भी इसी कोटि के हैं।

सुगुणपरंपरार्जितमु चोप्पुन गूरिचि यापदल् हरिं
पग गरुणन् निरंतर शुभंबु लोसंगग, नेरमोर्चि यिं
पुग दलिदंड्रुलुंबले सुबुद्धुलु सेप्पग, नन्नु धन्युजे
यग-गति नीवे वेङ्कट नगाधिपती! विलसत्कृपामती! ।। 79 ।।

व्याख्या

इस छन्द में विचार की दिशा कुछ बदली है। यहाँ दो बातें स्पष्ट हैं। एक दुर्गुणों के कारण दुष्कर्म - इनसे पाप समूह बढ़ता है। इसी प्रकार सुगुणों के कारण सत्कार्य तथा सत्कार्यों का फल पुण्य, तत्परिणामतः विपत्तियों का परिहार होता है। इसके साथ-साथ और अधिक पुण्य चाहिए तो उसके लिए अधिक भगवत्कृपा चाहिए। इसी संदर्भ में कवि कह रहे हैं - हे स्वामी! आप ही अब मेरे लिए गति प्रदान कर सकते हैं, क्योंकि मैंने अपने सुगुणों के बल पर अर्जित पुण्यों का गणन करने पर वे मेरे कष्टों और आपदाओं को हरने के लिए ही पर्याप्त हो जाते हैं। इस पर निरंतर सुख-संपत्तियों की बात बची ही रह जाती है। इसके साथ-साथ मुझसे जाने-अनजाने में होने वाली गलतियों और पापों के संबन्ध में माता-पिता के समान चेताने तथा मुझे धन्य बनाने के लिए आप ही एक भरोसा हैं। अब आगे का कर्तव्य आप ही का रह जाता है भगवान! कृपा कीजिए!

विशेष

(यह एक विशेष प्रकार की विनती है। यहाँ पाप-पुण्य की गिनती, तुलना, लौकिक दुख परिहरण तथा उस पर मुक्ति की बातें सबकी गिनती कर कम-ज्यादा का निर्धारण है। इस संदर्भ में तारने का दायित्व भगवत् कृपा के अधीन है)

तग शरणन्न मात्र रिपु तम्मुनिगाचिति, प्रेम दल्कुलो
त्तंग नोगि गोप गोव्रज नितंबिनुलं दयनेलितौ भली!
पोगडग नीवु भक्त सुलभुंडवु मायुरे! नी दयारसं
बगणितमौनु! वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ।। 80 ।।

व्याख्या

सही समय पर सही पद्धति को अपनाकर आपकी शरण माँगनेवाले शत्रु के सहोदर को - रावण के भाई विभीषण को - आपने अभय प्रदान कर रक्षा की है स्वामी! (रामायण की गाथा) कितनी ही अनुराग-कांतियों को विस्फारित करनेवाली दया से आपने गायों तथा गोप वनिताओं की रक्षा की है (श्रीकृष्णावतार की गोवर्द्धन लीला)। भला! कुछ स्तुति मात्र से भक्तों के वश में होनेवाले भगवान आप हैं। आप भक्त सुलभ हैं। आपके हृदय में अगणित कृपा रस भरा है। उसको मापना किसी के बस की बात नहीं है प्रभू। आप एक पुकार मात्र से भक्तों को मिल जानेवाले कृपासिंधु हैं। पता नहीं क्यों मुझे मिल नहीं रहे हैं! हे नाथ! मेरी वेदना समझकर मुझे प्राप्त हो जाइए (मेरा उद्धार कीजिए)।

पसचेड गुत्तुकं गफमु पर्वग दन्मय मात्म गप्पगा
नसुवुलु मेनि बायु समयंबुन दापमु मै घटिंचि सं
तसमर गाक मुन्नुग सुदर्शन धारण नी सुदर्शन

बोसगि कटाक्षवीक्षण चयोन्नति नाकु समस्त सद्गुणा
भ्यसन मोनर्पु, वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ।। 81 ।।

व्याख्या

हे वेंकटनगाधिपती! मेरी आँखे बंद होने के समय पर (यानी मृत्यु के चुंगुल में छटपटाते समय) अगर आप दर्शन देंगे तो क्या मैं आपके दिव्य सुंदर रूप का दर्शन कर पाऊँगा? क्या आपका दिव्य नाम उच्चरित कर पाऊँगा, स्वामी! शरीर में शक्ति न रहने पर (खत्म होने पर) कण्ठ में कफ और तन में सुधि न रहने पर क्या मैं आपका दिव्य-दर्शन ले पाऊँगा? एक स्पृहारहित तन्मयावस्था में, शरीर त्यागते प्राणों की स्थिति के समय क्या मैं आपको देखा पाऊँगा? प्रभू! सब दृष्टियों से शरीर अशक्त होने से पहले ही सुदर्शनायुध से विराजित आपका सुदर्शन भाग्य मुझे प्राप्त कराइएगा। ऐसे विशिष्ट दर्शन भाग्य से और आपके कटाक्ष-वीक्षणों को देखने की सौभाग्य-प्राप्ति से मुझे धन्य बनाइए नाथ! ऐसे दर्शन से मुझे औन्नत्य और उसकी महिमा से मुझे समस्त सद्गुण प्रदान कीजिएगा। शेष जीवन में पाप करने से दूर रहकर आपकी सेवा में ही अपने आपको अर्पित करना चाहता हूँ स्वामी! ऐसा अनुग्रह मुझ पर कीजिए।

विशेष

यह एक और पाँच चरणों का वृत्त छन्द है। एक विशिष्ट प्रार्थना इसमें है। मुकुंदमाला में निहित भाव की प्रतिध्वनि यहाँ है। उसका श्लोक है -

''कृष्णत्वदीयपद पंकज पंजरांत मद्यैव में विशतु मानस राजहंसः

प्राण प्रयाण समये कफ वात पित्तैः कंठावरोधन वोद्यौ स्मरणं कुतस्ते?''

पोसग विपन्नुडै शरणु पोंदिन गाचुटकन्न नेन्न बु
ण्यसरणि दद्विसर्जनमुकन्ननु धर्ममु लेदटंदु रिं
पेसगग जिक्कुलं दिडिन नेमि फलंबिक नो निकृत्तरा
क्षस! ननुबाददासकुनिगा दयनेलि मनोविकारदु
र्व्यसनमु मान्पु, वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ।। 82 ।।

व्याख्या

हे निकृत्तराक्षस! (राक्षसों को नाश करने वाले केशव!) आपत्तियों में डूबे रहने पर आपके चरणों में शरणागति की भावना से झुकने वालों की रक्षा का भार वहन करनेवाले आप ही हैं। आपके लिए इससे उत्कृष्ट धर्म और कोई नहीं है। यह सत्य है। लेकिन शरणागत को उसी स्थिति पर छोड़ना ही नहीं उसे अच्छी तरह उबारकर पुण्य मार्ग पर (सही मार्ग पर) छोड़ना भी है। पापों के मार्ग से उसे विमुख करना है। पुण्य-मार्ग पर उसे लाना है। (दिशा निर्देशन के साथ रास्ता बताना भी आपका कर्त्तव्य है।) इससे बड़ा धर्म और कुछ नहीं होगा। इस प्रकार के व्यवहार से ही मनुष्य को इस संसार में सांत्वना मिलेगी। अन्यथा उसकी रक्षा करना (उद्धार करना) केवल व्यर्थ प्रयास ही सिद्ध होगा न प्रभु! हे माधव! मुझे एक छोटा दास ही मानिए, पर दया से सही रास्ते पर उन्मुख कराइए! सिर्फ रक्षा मात्र मत छोड़िए। मेरे समस्त मनोविकारों और दुर्गुणों का नाश कर पुण्य-मार्ग पर मुझे लगाइए भगवान!

विशेष

यह एक और पाँच चरणों का छन्द है। इसमें एक नया भाव है। भक्त को पापों से मुक्त करना ही नहीं उसे सद्‌गुणों की राह दिखाने तथा उस पर बिना रुकवट के चलाने का दायित्व भी भगवान पर ही छोड़ रहे हैं भक्त कवि!

कलियुगवेल श्रीहरिनि गन्गोनलेमनु मूढबुद्धिचे
देलियग लेक मानवुलु दीनत जिक्किरि गाक वेङ्कटा
चलमुन नुन्न मिम्मु गनि सन्नुति चेसिन नीप्सितार्थ मी
दलतुरुगादे - वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ।। 83 ।।

व्याख्या

हे जनार्दन! कलियुग में आपको चर्मचक्षुओं (आँखों) से देख नहीं सकते हैं। मूढ़ता के कारण असली बात को, वास्तविकता को समझ नहीं पा रहे हैं। मैं ही नहीं समस्त मानव समुदाय दीनता के चंगुल में फँसकर निस्सहाय बिलख रहा है। उनकी आँखें खुल नहीं रही हैं (सत्य को पा नहीं रहे हैं।) आप तो वेंकटाद्रि पर विलसे हो। प्रत्यक्षतः प्रजा आपको ही देख सकती है। कलियुग प्रत्यक्ष देव आप ही हैं। आपका दर्शन कर आपकी सन्निधि में सन्नुति (सत् + नुति = प्रार्थना) करनेवाले सभी की कामनाएँ पूरा करते हैं न! हमेशा आप भक्तों की इच्छाएँ संपन्न करने के लिए तैयार रहते हैं न! इतने भक्त संरक्षक को पाकर भी इस दिशा में सोच न पाना हमारी ही मूर्खता है। मैं इस ओर सोच नहीं रहा हूँ प्रभू! मेरे लिए आप ही प्रत्यक्ष देव हैं। मेरी रक्षा (उद्धार) कीजिए।

अच्चपु मत्स्यरूपमुन नच्चु दलिर्पग वारिराशिलो
जोच्चि महोग्रदुर्मदुनि सोमकु व्रच्चि त्रयीकदंबमुं
देच्चि विरिंचि किच्चितिवि नीवकदय्य! वियच्चर व्रजं
बच्चेरुवंद - वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ।। 84 ।।

व्याख्या

स्पष्ट मत्स्य (मीन) का रूप धारण कर हे पुरुषोत्तम! आपने पहले प्रलय समुद्र में प्रवेश किया था। वहाँ छिपे सोमकासुर (सोम नामक

राक्षस) को मार कर वेद त्रय की रक्षा की। वेदों को सोम ने अपने पेट में छिपाकर रखा था तो आपने उसके पेट को चीर कर मारा। वेदों को ब्रह्मदेव के 'सुपुर्द' किया। इसे देखकर समस्त देवता समूह आश्चर्य चकित हो गया था। लेकिन आपके लिए यह आसान कार्य ही रह गया। (ऐसे आपके लिए मेरी रक्षा क्या भार!)

विशेष

भक्ति शतकों में दशावतार गाथाएँ सहज वर्णित होती हैं। इस छन्द में मत्स्यावार गाथा है। यहाँ से आगे के छंदों में अन्य अवतारों का उल्लेख है और साथ-साथ वेंकटपति से कवि का आवेदन भी।

अच्चेरुवंद मंदरमु नय्यमृतांबुधि देवदानवुल्
द्रच्चेडुचो सरोजमुकुल स्थित भृंग समान संगतिन्
ग्रच्चर वेन्नुन न्निलुप गच्छपमूर्ति वहिंचि तीव पें
पच्चुपडंग - वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ।। 85 ।।

व्याख्या

हे प्रभु! मंदर पर्वत मथिनी। वासुकी रस्सी! देवता और दानव अमृत मंथन क्रिया में लीन! बस बीच ही में मंदर पर्वत सागर में डूबने लगा। देव दानवों के बीच हाहाकार! बस, तब आप चुप नहीं रह सके। आश्चर्य, आपने कच्छप का (कछुए का) अवतार ग्रहण किया। तुरंत सागर में गये। अपनी पीठ पर मंदर पर्वत को लिया, संभाला - हे महाकच्छप अवतारी! वह दृश्य ही महान था। ऐसा लग रहा था कि आप कमल की कली हैं और मंदर पर्वत एक भौंरा है। (कच्छप और मंदर पर्वत की यह कल्पना अत्यंत मधुर है) इतनी आसानी से कार्य संपन्न किया कि सब आनंद विभोर हो गये। यही आपकी महानता है। समस्त

लोकों में कूर्मावतार की महिमा व्याप्त है। ऐसी कृपा बरसाने वाले देव आपके अलावा और कौन हैं श्रीपति!

विशेष

क्षीर सागर मंथन का अद्भुत वर्णन यहाँ भक्त कवि ने किया है। दशावतारों में मत्स्य, कूर्म, वराह, नरसिंह रूपों के सफेद होने की (धवल होने की) धारणा है। कहा जाता है कि बलराम भी एक सफेद बाल से अवतरित हैं। तेनालि रामकृष्ण ने अपने ''पांडुरंगमाहात्म्यम्'' महाकाव्य में इसी संदर्भ में कच्छप को सफेद कमल से और मंदर को भौरे के बच्चे से तुलना की है।

ग्राह निवास गर्भगत काश्यपि गन्गोनि वेग यज्ञवा
राहविधंबुचे घनपराक्रम मोप्पग गांचनाक्षर
क्षो हरणंबोनर्चि कोनकोम्मुन भूस्थलि नेत्ति तीव य
व्याहतलील - वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ।। 86 ।।

व्याख्या

यह वराहावतार की कथा है।

हिरण्याक्ष ने समस्त भूगोल को चटाई की तरह (गोल) मोड़कर महासागर में फेंक दिया था। वह सागर मगरमच्छों का निलय (ग्राहनिवास) था। उसमें काश्यपि (भूमि) डूब गयी। उसे देख स्वामी क्रुद्ध हुए। तुरंत यज्ञवराह का रूप धारण किया तथा जलनिधि में प्रवेश किया। भगवान ने अपने घन पराक्रम के अनुरूप हिरण्याक्ष का संहार किया। अपने दांत की एक छोर पर पृथ्वी को उठा कर अपनी भव्य लीला (ऐसी लीला जो अपूर्व और पुनः संभव नहीं) का प्रदर्शन किया। हे श्रीहरि! ऐसे महत्वपूर्ण कार्य को अद्भुत रीति से संपन्न करनेवाले आपको शत-शत प्रणाम! (अन्तर्निहित भावना है - ''मुझे भी तारिए'')

विशेष

इस अवतार विशेष के संदर्भ में तेनालि रामकृष्ण कवि का स्मरण आता है। उन्होंने समुद्र को 'तिमिधाम' (तिमिंगलों का आगर) कहा था। मंचेल्ल कवि ने यहाँ 'ग्राहनिवास' कहा है।

आदि वराह को यज्ञवराह भी कहते हैं। वराह ही वराह है।

राक्षस का नाम हिरण्याक्ष था। हिरण्य का अर्थ स्वर्ण (=कांचन) है। इसीलिए कवि ने उसे कांचनाक्ष (कांचन = सुवर्ण) कहा है इस छन्द में। इस प्रकार के शब्द प्रयोग को शब्द प्रौढ़ि कहते हैं।

स्नेहमेलर्प बालु गरुणिंचुटकै नरसिंहलील नु
त्साहमिगुर्प स्तंभमुन संभवमै नखरांकुरंबुलन्
साहसवृत्ति रक्कसुनि जक्कडगिंचिति वीवकादे घो
राहवभूमि - वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ॥ 87 ॥

व्याख्या

यहाँ नारसिंह (नृसिंह) अवतार का स्मरण है। हे श्रीहरि! आपका स्नेह अतुलनीय है। स्नेह के कारण ही बालक (प्रह्लाद) की बात की रक्षा करने और अपने सर्वान्तिर्यामी होने के निरूपण के लिए पहले आपने नरसिंह रूप ग्रहण किया है प्रभू! प्रह्लाद के पिता हिरण्यकश्यप ने अपने पुत्र से पूछा था कि 'क्या तेरा विष्णु इस स्तंभ में है'। बस जब हिरण्यकश्यप ने खंभे को अपनी गदा से मारा तो उसमें से ही नृसिंह रूप धारण कर विष्णु अवतरित हुए। अत्यंत साहस दिखाकर हिरण्यकश्यप को अपने नुकीले नखों (नाखूनों) से पेट चीरकर संहार किया।

यहाँ कवि राक्षस संहारी नृसिंह का स्मरण कर उनको साधुवाद दे रहे हैं। (इसी में अपनी रक्षा की प्रार्थना भी है)

विशेष

हिरण्यकश्यप को नरसिंह स्वामी ने युद्ध में नहीं मारा और न ही इनके बीच कोई भयंकर संग्राम हुआ। सिंहद्वार पर अपने जाँघों पर रखकर उसका पेट चीर-फ़ाड़ा। लेकिन कवि यहाँ ''घोराहभूमि'' शब्द का प्रयोग कर समर भूमि में हिरण्यकश्यप को मारने की बात कही है। संभव है कि हिरण्यकश्यप उस भीकर नृसिंह रूप को देखकर भय के मारे उस महल से बाहर भागने की कोशिश में इधर-उधर दौड़ा हो। उसका पीछा कर उसे पकड़कर भीषण रूप में उसका संहार किया हो। इसी कल्पना में कवि ने समर (= युद्ध) की बात कही है। कवियों को इतनी आजादी रहती ही है न! इतना ही नहीं भक्ति के साथ यह आजादी ठीक ही लगती है न!

उग्रमुखुल्लुतिंप बुरुहूतुन का त्रि जगंबुलु न्महा
नुग्रहलील निच्चुट कनूनमतिन् बलि वामनाख्य न
त्युग्रविधिन् रसातलमु नोय्यन जेर्चिति वीव कावे म
स्ताग्रमु द्रोक्कि - वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती!॥ 88 ॥

व्याख्या

यह वामनावतार से संबंधित प्रसंग है। इसमें उत्पलमाला छन्द का प्रयोग है।

बलि चक्रवर्ती ने तीनों लोकों (स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल) को अपने अधीन कर लिया। स्वर्गाधिपति इंद्र श्रीहरि के पास दौड़कर गये और उनसे प्रार्थना की - हे वैकुण्ठवासी! मेरा राज्य मुझे दिलाइयेगा।' तब हरि ने अदिति और कश्यप दंपति की संतान के रूप में वामन का अवतार लिया। बलि से तीन डग जमीन माँगकर, पाने के बाद, तीनों लोकों को

नापा। इंद्र को उनका राज्य दिया। बलि को पाताल में रहने के लिए बाध्य किया।

हे वासुदेव! शिव आदि देवता-समूह को आनंद देने के लिए आपने अपने अनुग्रह विलास को दिखाया न! अपनी महानुग्रह लीला को संपन्न करने के लिए बड़े से वामन का अवतार लिया है न! बलि चक्रवर्ती के पास वामन रूप में गये, फिर अत्युग्रविधि से पाताल में भेज दिया। उसके सिर पर पैर रखा तथा दबाकर पाताल भेज दिया। संहार नहीं किया (क्योंकि बलि तो भगवान का भक्त भी था)। ऐसी महानता किसके पास है श्रीनिवास!

उग्रबलाढ्यूलौ नृपुल नुर्वर निर्वदियोक्क मारु वी
राग्रहमोप्प गूलिचि तदस्रमुचे बितृ तर्पणलू महो
दग्रत जेसि विपृलकु धात्रि योसंगिन भार्गवान्ववा
याग्रणिवीव - वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ॥ 89 ॥

व्याख्या

यह परशुरामावतार की गाथा है।

हे श्रीनगाधीश! इस पृथ्वी पर भयंकर सेना बल युक्त और भीकर शक्तिशाली राजाओं में दुर्मदांधों का (अहंकारी राजाओं का) संहार अपनी परशु से ही किया है आपने। वह भी एक बार नहीं, इक्कीस बार युद्धयात्रा की है। उस क्रम में वीरोचित उग्रता प्रस्फुटित हुई है। उस समय क्षत्रियों की रक्त-धाराएँ बही हैं। उनसे आपने पितृ तर्पण किया है। क्षत्रियों के संहार से समस्त भूमण्डल आपके अधीन में आ गया। तो क्या उसे अपने लिए रखा? नहीं विप्रों को दान में दे दिया। इससे आप भार्गववंशाग्रणी हुए। प्रभु! यह आपकी उदारता ही है न।

विशेष

दिवंगतों की दहार्ति (प्यास) बुझाने के लिए उनके पुत्र तिलांजली अर्पित करते हैं। दोनों हाथों में पानी लेकर छोड़ते हैं। इसे विवापांजलि कहते हैं। भृगु महर्षि के पुत्र भार्गव हैं। उनका वंश भार्गवान्वय (भार्गव वंश) है। इसीलिए परशुराम को भार्गवराम भी कहते हैं। उस वंश में विष्णु ने अवतार लिया। अतः वे भार्गवान्वय अग्रणी हुए। ये ही श्रीवेंकटेश्वर हैं।

मृडु विलु द्रुंचि भूमिज वरिंचि मुनिस्तुत! दंड्रियाज्ञचे
नडवुलु सोच्चि कीशपदमंतयु भास्करसूतिकिच्चि या
जडाधिति गट्टि रात्रिचरसैन्यमु गोट्टि दशास्यु ठेव च
क्कडचिति वीव - वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ॥ 90 ॥

व्याख्या

यहाँ रामायण की कथा संक्षेप में निक्षिप्त है। बाँधा-मारा-लाया (कट्टे-कोट्टे-तेच्चे) रुप में कथा का संक्षित रूप तेलुगु प्रांत में प्रचार में है। समुद्र पर पुल बाँधा-रावण को मारा-सीता को लाया = यही रामायण की गाथा है न!

हे राम! हे सकल मुनीश्वर स्तुत्य! आपने शिव के धनुष को तोड़ा। भूदेवी तनया जानकी का वरण किया। पिता की आज्ञा मानकर वन गमन किया। वहाँ वाली और सुग्रीव दोनों भाइयों के झगड़े में अपना कर्तव्य संभाला। वानर राज्य (कीशा पद) सूर्यनंदन (सुग्रीव) को सौंपा। उन्हें किष्किंधा का राजा बनाया। उनकी सहायता से (वानरों के सहयोग से) समुद्र पर वारधि का निर्माण कराया। समुद्र को पार कर लंका पहुँचे। राक्षसों की सेना का संहार किया (रावण सेना)। दशकंठ को मारा। हे नाथ! यह सब आपने ही (श्रीनिवास) किया है न?

पुडमि ब्रलंब मुख्य रिपु पुंजमु द्रुंचि कलिंदजामदं
बडचि कुरुप्रवीरुलु भयंबुन बेग्गिल हस्तिनापुरिं
गडिमि बेकल्चि रेवतिकि गांतुडनन् बलरामुलील बें
पडरितिवीव-वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ।। 91 ।।

व्याख्या

यह बलरामावतार कथा का सार है। बलराम और वेंकटेश के बीच का अभेद यहाँ निरुपित है। सभी अवतारों के संदर्भ में भी यही भावना है।

हे नारायण! इस पृथ्वी पर प्रलंब आदि शत्रु समूह के प्रबल हो जाने पर आपने बलराम बनकर उनका संहार किया। तत्परिणामस्वरूप आपने प्रभंबघ्न, प्रलंबारि जैसे नाम पाये। कालिंदी नदी पर्वत श्रेणियों में से निकली है। वहाँ से निकलने के कारण उसे कलिंदजा, कालिंदी जैसे नाम मिले हैं। उस नदी का नाम ही यमुना (जमुना) है। आपने बलराम के रूप में उसके गर्व का दमन किया। जब कालिंदी ने आगे न आने का हठ किया तब आपने हल से उसे खींचा। उसे मनचाहे स्थान तक ले आए। कहा जाता है कि उस कालिंदी की लहरों में गोपिकाओं ने जल-क्रीडाएँ की।

पांडवों पर दुर्योधनादि कौरवों के अत्याचार के बारे में सुनकर आपने अपने हलायुध से ही हस्तिनापुर को उखाड़ फेंकने का प्रयत्न किया। उस समय आपका क्रोध ही ऐसा था। दुर्योधन तो आपका शिष्य था। जब बड़ों ने प्रार्थना की तो आप रुक गये। फिर भी हस्तिनापुर हलायुध के प्रहार से एक ओर झुकी ही रह गई। असल में तो आपने कौरवों की राजधानी को समुद्र में फेंकना चाहा था। ऐसी लीलाओं के कारण ही आपका नाम बलराम पड़ा और वह सार्थक हुआ। हे

रेवतीकांत! आप कितने महान हैं। (रेवती से बलराम का विवाह मानते हैं। यह महाभारत और भागवत दोनों में वर्णित है।)

चक्कनि बौद्धवेषमुन सारे पुरप्रमदालि मायलन्
मिक्किलि बेल्परिंचि येलमिं द्रिपुरंबु लडंचु वेल ना
चुक्कल रेनि ताल्पुनकु जोक्कपु बाणमवैन मी यशं
बक्कजमय्ये - वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ।। 92 ।।

व्याख्या

यह बुद्धावतार विशेष से संबन्धित वृत्तांत है। यहाँ का बुद्ध ऐतिहासिक पुरुष बुद्ध नहीं है बल्कि पौराणिक बुद्ध है।

हे वैकुण्ठनाथ! एक समय आपने बुद्ध का वेष धारण किया था। कुछ शिष्यों को साथ लेकर त्रिपुरा की वीथियों में संचार किया। वहाँ की प्रजा को प्रमुखतः नारी समूह को (पुर-प्रमदालि) सौगात सिद्धांतों का प्रबोध कर अंततोगत्वा उन सब को वैदिक मार्ग से विमुख किया। आपके वचनों से, जब त्रिपुरों में अवैदिक आचार प्रबल हो गये थे तब आपने शिव की सहायता से त्रिपुरासुरों का संहार किया। वे धर्म कवच में अति पराक्रमी और बलवान बने हुए थे। धर्म कवच को फोड़ने से उनकी शक्ति कम हो गयी। उनका आपने आसानी से संहार किया। उस समय आप चंद्रशेखर (शिवजी) के बाण बने। उसी से त्रिपुरासुर संहार हुआ। हे स्वामी! यह बहुत ही अचम्भे की बात है।

विशेष

शहरों (पुरों) के रूप में हवा में उड़ने की शक्ति रखनेवाले राक्षस तीन थे। इसीलिए उनको त्रिपुरासुर कहा गया। इस पृथ्वी पर जिस नगर पर गिरते हैं वह नगर सारा का सारा ढह जाता था। ब्रह्म द्वारा प्राप्त

वरदानों के साथ उनकी अपनी धार्मिक प्रवृत्ति उनको वज्रकवच के रूप में रक्षा प्रदान कर रही थी। देवताओं की प्रार्थना पर शिव और केशव एक हुए। तब जाकर उनका संहार संभव हो सका। (यह कथा रुद्र संहिता - युद्ध कांड में वर्णित है)

मिक्किलि रूपकांति कलिमिं गलिकिरिस्थिति वारुवंबुपै
नेक्कि कनत्करासि धरियिंचि वसुंधर दुष्टकोटुलन्
ग्रक्कुन द्रुंचि साधुजन रक्षण सेसेद वीवे कादे स
म्यक्कृप निंक - वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती!।। 93 ।।

व्याख्या

यह कल्कि अवतार से संबंधित छन्द है। कलियुगान्त में होनेवाला अवतार कल्कि अवतार के रूप में प्रचलित है। 'कल्कि' शब्द को कवि ने ''कलिकि'' रूप में प्रस्तुत किया है -

हे वेंकटनाथ! कलियुगांत में कल्कि के रूप में अवतरित होनेवाले हैं। असामान्य तेजोरूप में आपका अवतरण होगा। अश्वारूढ़ होकर आप इस पृथ्वी पर अवतरित होंगे। घोड़े पर चढ़कर ही आप आयेंगे। आपका आयुध चमकता हुआ तलवार (कनत् कटासि) होगा। तब तक समस्त धरती दुष्टों से भरी हुई होगी। सब दुष्टों का नाश आप करेंगे (जैसे राक्षसों का नाश पूर्व अवतारों में किया)। बचे-कुचे सज्जनों की रक्षा करेंगे। यह सब आपकी सम्यक कृपा से होगा। (यह आपका कार्य है और कर्तव्य है।)

विशेष

शंबल गाँव में विष्णुयश की संतान के रूप में कल्कि अवतरित होंगे, शिष्टों की रक्षा करेंगे। इससे युगान्त और नये युग का आरंभ

होगा। वही नया कृत युग होगा। फिर एक नवीन युग चक्र का आरंभ होगा। वह पुराण प्रवचन है। यह कल्कि अवतार से सिद्ध होनेवाला है।

पुराणोक्ति है

मत्स्यः कूर्मोवराहश्च नारिसिंहश्च वामनः।
रामो रामश्च रामश्च बुद्धः कल्कि रेव च।।

इसमें परशुराम - रघुराम - बलराम तीन राम हैं। बलराम के स्थान पर ''कृष्णश्च'' का अधिक प्रयोग है। यथा -

मत्स्यः कूर्मोवराहश्चनारसिंहश्च वामनः।
रामो रामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्कि रेव च।।

यहाँ कवि ने कृष्णावतार को दशावतारों में नहीं लिया है।

अक्कमलासनादि सुरलैन नुतिंपग जालनट्टि नी
वेक्कड! दुस्तरोग्र चलनैक मनस्कुड मानवुंड ने
नेक्कड! निन् भजिंचुटदि येक्कड! नैननु नन्नु ब्रोचुटे
यक्कट! कीर्ति - वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती!।। 94 ।।

व्याख्या

दशावतार कथाओं के स्मरण के उपरांत कवि अपने मार्ग पर - प्रार्थना और स्तुति मार्ग पर आ गये हैं। यहाँ से आगे समस्त छन्द सहज भक्ति भावों से सरल अभिव्यक्तियों से बढ़ते हैं।

हे जनार्दन! कमलासन (ब्रह्म) से लेकर कोई भी देवता आपकी स्तुति पूर्ण रूप से करने की योग्यता से युक्त नहीं है। अतुलनीय महत्ता और महानता से शोभित आप कहाँ और मैं साधारण मानव कहाँ! देवता समुदाय ही आपकी स्तुति नहीं कर पाता (आपके गुणों की गिनती नहीं

कर पाता) तो मैं कैसे कर पाऊँगा प्रभू! इतना ही नहीं मेरा मन भी स्थिर नहीं रहता। वह मेरे नियंत्रण में नहीं रहता है। हमेशा विभिन्न रीतियों में उछलता-कूदता है। यही उसका लक्षण बन गया है स्वामी! ऐसे मन से मैं कैसे आपकी सलक्षण स्तुति कर पाऊँगा। बस, मैं क्या करूँ। सब भार आप ही पर है। भजन न करनेवालों को भी आप तार देते हैं। करुणाकर प्रभु ऐसे भक्तों पर कृपा वर्षा बरसाने में ही आपकी कीर्ति निहित है। करुणा दिखाइए और तारिए स्वामी!

जाति रसाल मुख्य सुमजाति सदा मिमु बूज सेयुटे
भूति विरोधिनैन बरिभूति योनर्पक मेलुसेयुटे
नीति जितेंद्रियुंडयि विनीतिपथंबुन संचरिंचुटे
ख्याति नरुंडु - वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ॥ 95 ॥

व्याख्या

हे लोक रक्षक! मनुष्य जन्म पाने का लक्ष्य कुछ-न-कुछ भूति, नीति और ख्याति कमाना है। मैं भी चाहता यही हूँ। प्रमुख सुम जाति (फूलों के समूह) से हमेशा आपकी अर्चना करना ही भूति है (भूति = ऐश्वर्य)। चाहे शत्रु भी क्यों न हो उस पर संदेह किये बिना अपने से जितनी हो सकती है उतनी सहायता और भलाई करना ही नीति है। ठीक-ठीक अनुसरित करने योग्य रूप में चलना अच्छी नीति है। अपने अंतर-बाह्य इंद्रियों को अपने काबू में रखकर नीति मार्ग पर चलना जितेंद्रिय का लक्षण है। उसी पथ पर जीवन बिताना और उस पर मिलनेवाला उपहार ही ख्याति है। वही सही कीर्ति है। हे भगवान मैं इसी रूप में रहना चाहता हूँ। रहने का प्रयास भी कर रहा हूँ। इसे पहचान कर आप अपना कर्तव्य निभाइए।

एतरि धर्म मेमरक येल्ल जनावलि ब्रोचुवा डे भू
नेत, निरंतरंबु दगुनीति निजाधिपु गोल्चुनातडे
दूत, धनेच्छ नर्थिततति दोसिलि योग्गिन निच्चेनेनि पो
यातडे दात - वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ॥ 96 ॥

व्याख्या

प्रस्तुत छन्द में कवि कुछ लौकिक बातों को सामने ला रहे हैं। भक्ति शतकों में यह साधारण ही है। कवि कह रहे हैं -

हे दीनबंधु! हर समय धर्म पर आस्था रखकर बिना अपने पंथ को विस्मृत किये, सभी वर्गों की रक्षा करने वाला ही भूपाल (राजा) है। इसी प्रकार निरंतर अपनी नीति (राजनीति) का सच्चाई से अनुसरण करते हुए अपने राजा या अपने अधिकारी की सेवा में लीन रहनेवाला ही दूत है। धन (पैसा) की सहायता पाने की इच्छा से याचक समूह (अर्थी) आकर सामने अंजुली पसारता (हाथ पसारता) है तो उनकी इच्छा की पूर्ति करनेवाला ही सही अर्थों में दाता है। हे स्वामी मैं स्वानुभव से यह बात आपके सामने रख रहा हूँ। (इनका अनुपालन कर आप मुझ पर कृपा दिखाइए प्रभू!)

विशेष

अगर नेता अपने धर्म से हटता है, दूत अगर विश्वास पात्र नहीं है, प्रार्थी की माँग दाता पूरी नहीं करता है तो वह नेता, दूत और दाता कहलाने योग्य नहीं रह जाता। यहाँ लौकिक धर्म का विश्लेषण है।

आगमवेद्य! मी भजन मब्बनि वारि कशेष सत्क्रिया
भोगमुलेल राज्य सुख भोगमुलेल चराचरादिसं
योगमुलेल सांख्यमुख योगमुलेल समस्तयागमुल्
त्यागमुलेल - वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ॥ 97 ॥

व्याख्या

हे आगमवेद्य! (वेदों के द्वारा ही समझ में आनेवाले) आपका ध्यान करना और आपकी अर्चना करना ये सगुण हैं। ऐसे सगुण जिसमें नहीं हैं उसके लिए अन्य समस्त सत्कर्माचारणों और तत्संबंधी आडंबरों की क्या आवश्यकता है (जिनमें सगुण है उनके लिए यही बात है) सब वृथा है, सब बेकार है। ऐसे लोगों के पास राज्याधिकार हो और उसके बल पर समस्त सुख-भोग प्राप्त होते हों तो भी क्या लाभ है? इसी तरह आपकी अर्चना की आदत जिसमें नहीं है वह इस समस्त चराचर जीव राशि से कितने ही भले संबंध रखे या बनाये, क्या वे सब व्यर्थ नहीं हैं? उसी प्रकार सांख्य-वैशेषिकादि योगशास्त्रों का अध्ययन और अनुसरण भी किसी काम का नहीं होगा। सब व्यर्थ ही सिद्ध होंगे। भगवान! आपकी भक्ति पाना ही मौलिक सुगुण की प्राप्ति है। आपकी भक्ति के बिना इनका होना व्यर्थ है (न होना भी)। उनके लिए तरसना और बाधाएँ झेलना भी व्यर्थ ही है प्रभू!

विशेष

भक्त कवि का संदेश है कि भक्ति के बिना और किसी संपदा और ज्ञान का होना या न होना व्यर्थ है। कवि क्या चाहते हैं वह आगे के छन्द में स्पष्ट है। कवि के हृदय का साक्षात्कार उसमें हुआ है।

नी पद नीरजातमुलु नेम्मदि नम्मिनवारि केल्ल सं
तापमु लेदु सम्मदमु तक्कुव गादु लवंबु मात्रमुं
बापमु लेदु धर्म गुण मार्गमु पोदु तलंचि चूडगा
नापद रादु - वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ॥ 98 ॥

व्याख्या

हे तिरुमलेश! आपके पद कमलों पर पूर्ण विश्वास कर आपकी सेवा में रत व्यक्ति को कभी भी संताप (दु:ख) नहीं होगा। सुख-संतोष और आनंद की कमी नहीं होगी। लेश मात्र पाप पंक नहीं लगेगा। स्वाभाविक धर्म मार्ग से वह कभी विचलित नहीं होगा। (सर्वकाल सर्वावस्थाओं में वह धर्म का अनुसरण करनेवाला ही रहेगा)। एक और बात यहाँ कहने की इच्छा हो रही है प्रभू! आप पर विश्वास रखनेवालों के सामने कभी किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं आयेगा। किसी ढंग की आपत्ति नहीं सतायेगी। यह मेरा अटूट विश्वास है हे नगाधिपती! रक्षा करो! (ताप मन संबन्धी है और आपत्ति शारीरिक)

इभ भयदूर! यिंक दयनेल वदेर! भवच्चरित्रमुल्
शुभदमु लौर! नन्नारुण जूडग रार! मुदंबुदेर, ना
यभिमत मेल्ल दीर, दुरितावलि जार, नयंबु मीर, ना
कभयमु नीर! वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ॥ 99 ॥

व्याख्या

पहले आपने गजेंद्र (इभ) का भय दूर किया है न प्रभू! अब भी (मेरी इतनी प्रार्थनाओं के बाद) आप क्यों मुझ पर दया नहीं कर हो? हे परमात्मा! आपकी गाथाएँ सब कितने शुभप्रद हैं। आपके सब कार्य कितने फलदायक हैं प्रभू! मुझ पर करुणा दिखाने क्यों नहीं आगे आ रहे हो?, तुरंत आइयेगा। आइए नाथ - मेरी कामनाओं की पूर्ति करने, मुझे संतोष प्रदान करने और मेरी पाप - परंपरा का नाश करने! इससे आपका यश दुगुना ही होगा। बस मुझे अभय दान दीजिए। मुझे रक्षा प्रदान कीजिए (मुक्तिदान कीजिए) श्रीनिवास!

विशेष

भक्ति की अतिशयता में भक्त भगवान का संबोधन 'अरे' कहकर भी कर सकता है। यह सहज स्वाभाविक भी है। यही इस छन्द में देखा जा सकता है। आर्ती भरा छन्द है यह। कवि का निर्मल हृदय इस छन्द में झलकता है।

माटिकि नी पदाब्जमुल माटिक जोच्चिति नोंडु माट लिं
केटिकि, राजहंस चदलेटिकि डासेडि भंगि नुन्न ने
नाटिकि जागे गानि योकनाटिकि गन्पडवेमि नीटयो!?
हाटकशाटि! वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ॥ 100 ॥

व्याख्या

हे हाटकशाटी (सुवर्ण वस्त्र धारण करनेवाले)! मैं बार-बार आपके पाद पद्मों के पास ही आ रहा हूँ। आपके चरणों तले ही मैं अपना स्थान बना रहा हूँ। फिर भी आप असहनीय देरी क्यों कर रहे हैं? और बातें क्यों, मेरी एक बात पर ध्यान दीजिए। दृष्टि डालिए प्रभू! राजहंस हमेशा आकाश गंगा के पास ही पहुँचता है न? बस मैं भी आप के पद कमलों के पास ही आ गया हूँ। फिर भी आपकी ओर से क्यों देरी हो रही है? आप क्यों दर्शन नहीं दे रहे हैं? मैं कुछ अज्ञानवश पूछ रहा हूँ यह - आप में अकड़ कहाँ से आ गई है, जरा बताइए।

विशेष

भक्त का भगवान से इस प्रकार प्रश्न करने की दुष्टता सहज स्वाभाविक है। सभी भक्त कवियों ने इस रूप का प्रदर्शन किया है।

वेलसिनदय्य नी बिरुदु विष्टपजालमुनंदु नाकुनुं
देलिसिनदय्य नी वेपुडु दीन शरण्युडवौट नीपयि

न्निलिचिनदय्य ना मनसु निश्चलमै दयनेलु मय्य
माय्यलु वलदय्य - वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती!॥ 101 ॥

व्याख्या

हे वेकटरमणा! भुवन (विष्टप) समुदाय में (समस्त लोकों में) आपके बिरुद की ख्याति फैली हुई है। आप भक्तजन रक्षक हैं प्रभू! मुझे भी पता लग गया है कि आप दीन जन बन्धु हैं। हमेशा भक्त जन रक्षापरतंत्र हैं। अब मेरा मन निश्चय और शान्ति से भर गया है। बस, मेरी आपसे एकमात्र प्रार्थना है - हे प्रभु! अब किसी प्रकार की माया फैलाने की आवश्यकता नहीं है। परीक्षाओं की जरूरत नहीं है। दया से स्वीकार करना मात्र बचा है। हे श्रीनिवास! कृपा कीजिए!

एंदु महाघ रोगमु रहिं दोलगिंपग नीदु नाममे
मंदु, ननाथलै मेलगु मंदुलकुं दरि नी वटंचु ने
विंदु, ग्रहिंचि तौ विदुरु विंदु, नटुंबले नादु विंदु गो
म्मंदु, मुकुंद! वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ॥ 102 ॥

व्याख्या

हे मुकुंदा! चाहे किसी भी लोक में हो या चाहे किसी काम में हो महापाप (महाघ) रूपी रोग का निवारण केवल आपके नाम स्मरण से ही संभव हो सकता है। चुटकी भर में रोग निवारण का दिव्य औषध यही है प्रभु! निराश्रित और मंदबुद्धि सभी के लिए भवसागर को पार कराने वाला दिव्य नाव 'नाम जप' ही है। मैंने सुना यही है। माना है कि सबके तारक आप ही हैं! पहले एक बार आपने अत्यंत प्रेम से विदुर का दिया प्रीतिभोज उनके घर जाकर स्वीकार किया है न! उसी प्रकार मेरे यहाँ भी आप पधारिए। मेरे द्वारा दिये जानेवाली भोज को भी स्वीकार

कीजिए प्रभू! (एक बार ही सही आइए)। यह मेरे ऊपर बड़ी कृपा होगी; दयासागर!

पंबिन प्रीति ने गति भवं बेडबापि कृतार्थु जेसेदो
यंबुजनाभ! ना मति महाविपरीत मदेन्न रादु, चि
त्तंबु वशंबुगादु, विदितंबुग नन्गरुणिंतुवन्न धै
र्यंबरगादु - वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ।। 103 ।।

व्याख्या

हे पद्मनाभ! मुझे अतिशय रूप में उमड़ी प्रेम भावना से, वात्सल्य से, मुझे सभी भवबंधनों से मुक्त कर कैसे आप उभारेंगे प्रभु! सब आपके हाथों में ही है। मेरा सारा भार आप पर ही छोड़ रहा हूँ। मेरी मति (बुद्धि) अति विपरीत दिशा में चलती है। कभी-कभी मुझ में शंका पैदा करती है और सोचने को बाध्य करती है कि भगवान है या नहीं। मेरा मन भी ऐसा ही है। वह अपनी मर्जी पर चलता है। आप पर टिकता ही नहीं। अपने रास्ते पर आप चलता है। वह आपकी ओर टिककर रहता ही नहीं! मैं क्या करूँ नाथ! आप दीनरक्षक हैं। अवश्य मुझे करुणा से पालेंगे। इसी धैर्य को लेकर मैं जीवित रह पा रहा हूँ। यह धैर्य डिगता नहीं, यह शायद मेरा सौभाग्य है। स्वामी मेरा विश्वास सही हो, आपकी कृपा से! इस विश्वासपात्र को तारो नाथ।

गुहुनि विभीषणुन् शबरि गूरिमिनेलुट लादिगाग नी
महिम समस्तमुन् बुध समाजमुचे विनियुंडुटन् हरी!
यिह पर साधकुंडवनि ये हृदयंबुन नम्मि (निन्नु) ब्र
त्यहमु भजिंतु वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ।। 104 ।।

व्याख्या

हे श्रीहरी! रामावतार के समय आपने केवट को प्रेम से अनुगृहीत किया था। शत्रु सहोदर (रावण के भाई) विभीषण पर अनुराग की वर्षा की थी। मतंग महर्षि की शिष्या शबरी का - उसके द्वारा अर्पित जूठे बेर खाकर - उद्धार किया। ऐसे अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये। इन सब में आपकी महत्ता और महिमा व्यक्त होती है। पंडित और भक्त समूहों ने इन घटनाओं के आधार पर आपके गुणगान किये हैं। उन सबको मैं सुन चुका हूँ। इस पर मेरे हृदय में आप पर विश्वास जग गया है। आप इह और पर को साधकर बाँटने की क्षमता रखनेवाले उदार भगवान हैं। आप महिमा से युक्त देव हैं। इस विश्वास के प्रबल होने पर मैं दिन-रात आपकी सेवा में रत हूँ। ध्यान में मग्न हूँ। केवट को जो स्नेह दिया था उसी प्रकार का स्नेह मुझे भी दीजिए प्रभू।

दंडमु नीकु, नी महिम धातकु शक्यमे येन्न, नी भुजा
दंडमु (धूत) पाप जन तंडमु, नी घनकांड भीकरो
द्दंडमु निर्जितार्णवमु, तावक चक्रमु रक्षितार्त वे
दंडमु नौटे! वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ।। 105 ।।

व्याख्या

हे पद्मावतीप्रिय! लीजिए यही मेरी वंदना! आपकी महिमा का पता लगाना क्या ब्रह्म को भी संभव होगा! दृढ़ एवं लंबे-लंबे भुज-दंडों से आपने समस्त शत्रु (राक्षस) समूह का नाश किया। आपकी दोनों भुजाओं में ऐसी शक्ति निहित है नाथ! आपके अनेक अवतारों में इस शक्ति की महिमा दर्शित हुई है। आपकी घन (तीक्ष्ण) बाण शक्ति अतुलनीय है। वह

भीकर और उद्दंड है। आपके बाण ने समुद्र को ही कँपा दिया था (उद्धत समुद्र ने जब वानरों से सेतु के निर्माण का आरंभ किया, बाधा डाली, तब राम ने समुद्र पर बाण का संधान किया। थर-थर कंपते हुए समुद्र ने राम से क्षमा माँगी और सेतु बंधन में अपना सहयोग दिया)। समुद्र स्वयं राम के सामने ''पाहि पाहि'' कहकर झुक गया। श्रीमन्नारायण! आप जब सुदर्शन चक्र धारण करते हैं तो आर्त की रक्षा हो ही जाती है। (नारायण ने गजेंद्र की रक्षा में सुदर्शन का उपयोग किया था। मगर का संहार किया और उसे मोक्ष भी दिया।) हे श्रीनाथ! आपकी महिमा का वर्णन सही रूप में किसी से हो ही नहीं सकता। आपकी महिमा शब्दों के वर्णन से परे की है। बस, मन की चपलता से मैं इस प्रकार टूटे-फूटे शब्दों में कुछ कह रहा हूँ। प्रभू! मेरी रक्षा कीजिए।

सरस विलास वाक्य मृदु संगतुलं दगु काव्य कन्यकन्
वरमति नी कोसंगिति नवारण श्रीयलमेलुमंग तो
सरिग बरिग्रहिंचि वरुसं बरिपालन माचरिंपु म
य्य! रहि वहिंप - वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती!॥ 106 ॥

व्याख्या

हे नील घनश्याम! रस संयुत हो विलसित वाक्यों के संगुंफन से युक्त एवं सुलंकृत (सु अलंकृत) इस काव्य-कन्या को आपको अर्पित कर रहा हूँ। इस रचना में अनेक सुकुमार भावनाएँ प्रस्तुत हैं। इस रचना के उपयुक्त भर्ता (स्वीकर्ता) आप ही हैं। इसे श्रेष्ठ भाव से (वरमति से) स्वीकार कीजिएगा। मैं थोड़ा बहुत संगीत भी जानता हूँ। उससे युक्त कर मैं इस सालंकृत कन्या को अर्पित करता हूँ, प्रभू! आप संपूर्ण मन से

स्वीकृत कीजिए। इस पर अलमेलुमंगा के समान मान्यता और प्रेम दिखाइएगा नाथ!

मंगलमार्यसंग! जयमंगल मीशमनोऽब्ज भृंग! स
न्मंगल मूर्ति भंग! शुभमंगल मभ्रचरत्तुरंग! श्री
मंगल मुज्ज्वलांग! शिव मंगल माश्रित सौख्यकृद्दया
पांग तरंग! वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ॥ 107 ॥

व्याख्या

अब श्रीनिवास काव्य-वधू समेत हैं। काव्य कन्यका का वरण किया है। इसलिए भक्त कवि भगवान को आशीर्वाद दे रहे हैं। मंगलाशासन कर रहे हैं। भक्त और भगवान के बीच का सम्बन्ध जब घना बन जाता है तो मंगलाशासन द्वारा भक्त उस सम्बंध को सुहृद बनाता है -

हे आर्यसंग! (हमेशा सत्पुरुषों के साथ मिलकर रहनेवाले प्रभु!) आपका मंगल हो! शंकर के मनोब्ज के भृंग हैं आप! भगवान शिवजी का मन पद्म है तो उसके लिए आप भ्रमर समान हैं। ऐसे आपका जय मंगल! हे अभ्रचरत्तुंग! आसमान में गरुड़ पर विराजमान हो आश्रितों को शुभ पहुँचानेवाले भगवान! आपको शुभमंगल! दया रस वाहिनी श्रीलक्ष्मी की दृष्टि से आनंद तरंगयित मन पानेवाले श्रीहरि आपको शुभ मंगल! आपको शिव और मंगल ही प्राप्त हो प्रभु!

विशेष

इस छन्द में मंगल कामना संस्कृत समासों से युक्त नाम स्मरण से की गयी है। यह स्वाभाविक और सहज प्रवृत्ति है। भक्त इसी प्रकार की प्रांजल शैली में भगवान का मंगलाशासन करता है।

क्षितिनि ननेक दुर्जनन सिंधु घनोर्मिकल न्मुनुंगु च
प्रतिहतमैन तद् व्यथल बायु नुपायमु लेक नी कटा
क्षतरिनि रुढ़ि नेटि किट गांचि तरिंचिति नंचु निर्भया
यतमतिनैति वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ।। 108 ।।

व्याख्या

हे विलसत्कृपामती! वेंकटनगाधिपती! पता नहीं इस भूलोक पर मैंने कितने जन्म लिए हैं। अनेक दुर्जन्मों की परंपरा चली है। यह भवसागर है। इस सागर की कितनी बड़ी-बड़ी लहरें हैं! उनमें डूबते-उभरते अनेक जीवन बीते हैं। उन थपेड़ों की पीड़ा मैंने सही है। अप्रतिहत बाधाओं से बचने का कोई मार्ग मेरे सामने नहीं था। आज तक मैंने ऐसे ही जीवन बिताया है। हे स्वामी! आज आपके पास से आपके कटाक्ष की प्राप्ति से मुझे इस सागर से बचने के लिए एक छोटा-सा नाव मिला। मुझे विश्वास हो गया है कि इसकी सहायता से दूसरे किनारे पर पहुँच पाऊँगा। (आपकी दया से मुझे मुक्ति प्राप्त होगी स्वामी!) इसी हिम्मत से मैं अपने आपको सांत्वना दे पा रहा हूँ। मैं एक निर्भयता की स्थिति प्राप्त कर चुका हूँ। मुझे सही पहचान हो गयी है। अब सब आपके ही हाथ में है प्रभू!

विशेष

शतक का अर्थ 'एक सौ' है। शत संख्या के अंत में शून्य रहता है। इसलिए एक परंपरा बनी है कि शतक में सौ से कुछ अधिक छन्द हों। कुछ कवि इस संख्या को 108 तक ले गये हैं। इस शतक का यह आखिरी छन्द माना जा सकता है। इसीलिए कवि ने धैर्य प्राप्ति की बात

की है। अंतिम छन्द में धैर्य के साथ कवि ने कहा कि हे प्रभु मैं मुक्त हो गया हूँ। जन्म के धन्य होने की बात स्पष्ट कही गई है। भक्ति रचनाओं का परमार्थ यही है। अष्टोत्तर शत संख्या यहाँ संपन्न होती है (पहले 108 नामों का स्मरण किया गया है)।

इससे आगे के छन्द भी महत्वपूर्ण हैं संख्या को ११२ तक पहुँचाते हैं।

सततमु नात्म विग्रह वचः प्रकृतींद्रिय हस्तपाद हृ
न्मति कृतमेल्ल नी पद समर्पण जेसिति, मत्कृतंबुलन्
हितमहितंबु सर्वमु सहिंचि ननुं गृप जूडु मंगला
यतनमुगाग वेङ्कट नगाधिपती! विलसत्कृपामती! ।। 109 ।।

व्याख्या

हे विलसत्कृपामती! वेंकटनगाधिपती! मैंने अब तक जो भी किया है उस समस्त को आपको अर्पित किया है। आत्मा से, शरीर से, वाक् से, स्वभाव से, ज्ञानेंद्रियों से, मति से किया समस्त आपके पाद पद्मों में समर्पित है। मेरे किये में से (मुझसे मनोवाक्कायकर्मणा जो भी अच्छा हुआ है।) जो हित और धर्म युक्त है उसे स्वीकार कीजिए। परिणामस्वरूप मुझे शुभ परंपराएँ मात्र प्राप्त कराइए प्रभु! (मंगलायतन बनाइए)!

विशेष

भक्ति साहित्य में यह एक गंभीर भावना है। जीवन में, प्रधानतया दिनचर्या में, किये गये समस्त कर्म को भगवान की अर्चना समझना और उन्हीं को अर्पित करना। धर्मबाह्यों को छोड़ने और हितकार्यों को स्वीकार

करने का दायित्व भी स्वामी पर ही छोड़ना। पूजा के अंत में मंत्रपुष्प पठन होता है। उसमें 'आयतनवान् भवति' पुनरुक्त होता है। इसको स्फुरित करने के लिए इस छन्द में 'मंगलायतनमुगाग' - 'शुभ परंपराओं का निलय हो' कहा गया है।

चदिविन वारिकिन् विनग जालिन वारि कनंत भोग भा
ग्यद मगुचुन् वचः श्रुति सुखंबयि शतकंबु निंपु सों
पोदव रवींदु तारमुग नुर्वर पै ब्रकटं बोनर्चु म
य्य! दय दलिर्प - वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती ।। 110 ।।

व्याख्या

यह फलश्रुति से संबंधित छंद है। भक्ति काव्यों में फलश्रुति अवश्य मिलती है। उसमें सबको सुख-भोग देने की प्रार्थना एक विशेषता है -

हे विलसत्कृपामती! वेंकटनगाधिपती! इस शतक के पढ़नेवालों को, सुननेवालों को, सुन सकनेवालों को सभी को अमित योग और भाग्य प्रदान कीजिए। पढ़नेवालों को वाचक (वाक्) शुद्धि और सुननेवालों को श्रवणानंद की प्राप्ति भी मिले प्रभु! सूर्य-चंद्र और नक्षत्र जब तक प्रकाशित रहते हैं तब तक इस भूगोल (भूमि) पर इसकी प्रसिद्धि (प्रचार) रहे प्रभु! ऐसी आपकी कृपा हो। ऐसा अनुग्रह प्रदान कीजिएगा।

भ्राजित मंचेलान्वयुड बापय मंत्रि तनूजुडन् भर
द्वाज सगोत्रजुंड ब्रिय भक्तुड गृष्ण कविन् भवत्पदां
भोजयुगांकितंमुग समुन्नति गब्ब मोनर्चिनाड न
व्याजत गोम्मु वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ।। 111 ।।

व्याख्या

यह समर्पण (अंकित) छन्द है। कवि अपना थोड़ा-सा परिचय दे रहा है।

हे विलसत्कृपामती! वेंकटनगाधिपती! मैं मंचेल्ल वंशजात हूँ। हमारा वंश भ्राजित (प्रकाशमान) वंश है। हमारा 'घर नाम' मंचेल्ल है। मैं पापय मंत्री का पुत्र हूँ। हमारा गोत्र भरद्वाज गोत्र है। मैं आपका प्रिय भक्त हूँ। मेरा नाम कृष्ण कवि है। अव्याज कृपा से (अकारण दया से) मुझ पर किसी प्रकार से शंका किये बिना इसे स्वीकार कीजिए, प्रभू!

विशेष

बड़ों के पास जाने पर प्रवर (वंश, गोत्र, पिता आदि के नामों के साथ) यानी अपना पूरा परिचय देना भारतीय परंपरा है। ऋषि नाम साथ गोत्र बताया जाता है। भक्त कवि यहाँ भगवान के सामने प्रणमित हो शतक का समर्पण कर रहा है।

पुरुष मुख्य रंग रघुपुंगव वेङ्कटनाथ कृष्ण शृं
गार कथालि नैदु शतकंबु लोनर्चि तटाक बाह्य धा
त्री ख्यह मुरु संततुलु प्रेम नोनर्चि योसंगिनाड़ सों
पार ग्रहिंपु वेंकटनगाधिपती! विलसत्कृपामती! ।। 112 ।।

व्याख्या

हे विलसत्कृपामती! वेंकटनगाधिपती! मैंने 'पुरुष मुख्य शतक', 'रंग शतक', 'रघुपुंगव शतक', 'वेंकटनगाधिपति शतक' और 'श्रीकृष्ण श्रृंगार शतक' - शीर्षकों से पाँच शतकों की रचना की है। उन्हें आपको

ही समर्पित किया है। तटाक निर्माण, उद्यान-वन निर्माण आदि मुख्य संतानों की व्यवस्था भी की है, प्रभू! प्रेम से मुझे अनुगृहीत कीजिएगा!

विशेष

तटाक, निधि, अग्रहार (ब्राह्मणों के लिए रहने योग्य गाँव का निर्माण), मंदिर, बाग-बगीचे, काव्य, पुत्र - ये सप्त संतान माने जाते हैं। सप्त संतान द्वारा ही मुक्ति मिलेगी - यह भारतीयों का विश्वास है। इनमें कुछ का निर्माण करना भी समुचित माना जाता है। कवि ने इनमें से तीन का उल्लेख किया है - तटाक (तालाब), उद्यान-वन और काव्य! अन्यों की सूचना मात्र है।

* * *